# शिवतत्त्व

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

**श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी**

के श्रीमुखनिःसृत अमृतमय वाणीसे सङ्कलित

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः ॥

# शिवतत्त्व

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्य

नित्यलीलाप्रविष्ट

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

**श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके**

**अनुगृहीत**

त्रिदण्डिस्वामी

**श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी**

के श्रीमुखनिःसृत अमृतमय वाणीसे सङ्कलित

# विषय सूची

प्रस्तावना ............................................ i

अध्याय-१ शिवतत्त्वके तीन विचार...... 1

तत्त्वगत विचार ............................................ 2

ऐश्वर्यगत विचार ............................................ 5

नरवत् विचार ............................................ 6

अध्याय-२ असुरोंको वरदान ............... 8

राजा जयद्रथको वरदान ............................ 9

शाल्वको वरदान ............................................ 12

रावणको वरदान ............................................ 14

मय दानव ............................................ 17

वृकासुरको वरदान ............................................ 19

बाणासुरकी रक्षा ............................................ 22

काशी दहन ............................................ 26

अध्याय-३ कामदेवपर विजय ........... 29

सतीजीका शिवजीके कथनपर सन्देह ....... 29

कामदेवका भस्म होना ............................................ 36

अध्याय-४ पूर्ण प्रेमका दान ............ 41

सनातन गोस्वामीसे मित्रता ............................ 43

ब्राह्मणको भगवत्-प्रेमदान ............................ 44

अध्याय-५ पद और व्यक्तित्व .......... 47

शिवजीका स्वरूप ............................................ 47

शिवजी ब्रह्मासे श्रेष्ठ ............................................ 49

शिवजी और प्रह्लाद ............................................ 52

उपसंहार ............................................ 56

# प्रस्तावना

शिवजी भगवान् श्रीकृष्णकी स्वेच्छासे प्रकट हुए। मनुष्य जीवनके परम लक्ष्य और भगवान्से सम्बन्ध जाननेके लिये शिवतत्त्वका ज्ञान अति आवश्यक है। शिवजीके अनेक नाम और रूप हैं, जैसे शङ्कर, शम्भु, महेश आदि। अपने मूल रूपमें वे गोपीश्वर महादेव हैं और इस रूपमें वे भक्तिराज्यके द्वारपाल हैं। वे भगवान्की निःस्वार्थ सेवाके रूपमें भक्ति मार्गपर चल रहे साधकोंपर कृपा करके उनका मार्ग सरल और सुरक्षित बना देते हैं। परमाराध्यतम गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने गुरु-परम्परासे प्राप्त ज्ञानके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी स्थितिका स्पष्ट वर्णन किया है और शिवतत्त्वके रहस्यका उद्घाटन करके शिवजीकी कृपा और सहनशीलताके गुणोंको उजागर किया है।

इसके प्रमाणके रूपमें शास्त्रोंसे अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जो उनके भीतर विरोधी गुणोंके समावेशके रहस्यको प्रकाशित करते हैं। वे जगत्की प्रलय करनेवाले होनेपर भी जगत्की सृष्टिके उपादान हैं; तमोगुणके अधिष्ठाता होनेपर भी वे दिव्य ज्ञानके भण्डार हैं; वे छल करनेमें चतुर हैं और साथ ही परम कृपालु भी हैं। भूत-प्रेत-पिशाच आदि उनके परिकर होनेपर भी बड़े-बड़े देवता और भक्त उनके सङ्गकी अभिलाषा करते हैं, यहाँ तक कि वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका सङ्ग भी प्राप्त करते हैं। इन सब विषयोंका इस ग्रन्थमें विशद विवरण दिया गया है, जिसे पढ़कर पाठक शिवजीके वास्तविक स्वरूपको समझकर अपने जीवनको सफल कर सकेंगे।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णवकी कृपासे परमाराध्यतम गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा बतलायी गयी शिवजीकी अद्भुत महिमाको इस ग्रन्थमें प्रकाश करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। मुद्रण कार्यमें शीघ्रताके कारण यदि ग्रन्थमें कुछ त्रुटि-विच्युति दिखायी पड़े, तो सज्जन पाठकवृन्द निजगुणोंसे क्षमा करेंगे और संशोधनका ग्रन्थका सार ग्रहण करेंगे।

**प्रकाशक**

# अध्याय १
# (शिवतत्त्वके तीन विचार)

शिवजीके सम्बन्धमें अनेक मत हैं। शिवजीके कार्यकलाप भी अत्यन्त अद्‌भुत हैं। शिवपुराणके अनुसार शिवजी ही परम ईश्वर हैं, समस्त सृष्टिके मूल एवं सभीके आराध्य हैं। सभी देवताओंमें प्रधान होनेसे वे देवोंके देव 'महादेव' कहलाते हैं। 'शिव', इन दो अक्षरोंके नामका एक बार भी उच्चारण करनेसे मनुष्यके समस्त पाप धुल जाते हैं। शिवका अर्थ ही है 'मङ्गलमय'।

शिवजीमें विरोधी गुणोंका सम्मिश्रण देखा जाता है। वे शरीरमें चिताकी भस्म लगाते हैं, गलेमें नरमुण्डोंकी मालाको धारण करते हैं, सर्पोंके आभूषणोंसे सुशोभित होते हैं तथा श्मशान जैसे अपवित्र स्थानपर वास करते हैं, परन्तु उन्हींके चरणोंसे गिरे निर्माल्यको ब्रह्मा आदि देवता अपने शीशपर धारणकर स्वयंको धन्य मानते हैं। शिवजी थोड़ेसे प्रयाससे ही अति शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, इसलिये वे आशुतोष कहलाते हैं, परन्तु साथ ही वे सृष्टिके संहारका कार्य भी करते हैं। कामदेव द्वारा उन्हें मोहित करनेके प्रयाससे क्रोधित होकर उसे भस्म कर देते हैं, परन्तु श्रीविष्णुके मोहिनी रूपसे मोहित होकर पार्वतीजीके सामने ही कामासक्त होकर उनके पीछे दौड़ते हैं। कहाँ भगवान् श्रीरामकी शक्ति सीताजीको चुराने वाले रावणको वरदान देने वाले, उसे चन्द्रहास खड्ग देने वाले हैं और कहाँ श्रीरामचन्द्रजीके परम भक्त हनुमानके रूपमें सब समय उनकी सेवा करते हैं? एक ओर कैलाश पर्वतपर समाधि लगाकर सदा श्रीकृष्णकी अष्टकालीय लीलारसका आस्वादन करते हैं और कहाँ भूत-पिशाच-प्रेतोंको परिकर बनाकर उनकी सभामें आनन्दके साथ विराजमान होते हैं। शिवजीका ऐसा अद्‌भुत चरित्र वास्तवमें सभीको मोहित करने वाला है।

शिवजी वास्तवमें कौन हैं? क्या वे स्वयं भगवान् हैं? क्या वे श्रीकृष्ण अथवा श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं? क्या वे भगवद्-तत्त्व हैं अथवा जीव-तत्त्व हैं? इन प्रश्नोंके समाधानके लिये हम शास्त्रों तथा पूर्व आचार्योंके मतोंका विशलेषण करेंगे। शिवजीके चरित्रको समझनेके लिये पूर्व आचार्योंने शास्त्र-सम्मत तीन प्रकारके विचारों द्वारा वास्तविक

तथ्यको समझानेका प्रयास किया है। ये हैं -

प्रथम- तत्त्वगत विचार - दार्शनिक सत्य जिसके द्वारा उनका सम्बन्ध प्रकाशित हो।

द्वितीय- ऐश्वर्यगत विचार - जिससे उनके सम्बन्धका ज्ञान श्रीराम और श्रीकृष्णकी ऐश्वर्यपूर्ण लीलाओंके द्वारा जाना जाता है।

तृतीय- नरवत् विचार - ऐसा विचार जिससे उनके सम्बन्धका ज्ञान श्रीराम और श्रीकृष्णकी मधुर नरवत् लीलाओंके द्वारा होता है।

## तत्त्वगत विचार

द्वापर युगमें भगवान् श्रीनारायणके कलावतार व्यासदेवजीका जन्म हुआ। एक दिन सूर्यास्तके समय वे सरस्वती नदीके तटपर बैठे थे। भूत तथा भविष्य सभीको जानने वाले व्यासदेवजीने देखा कि समयके प्रभावसे प्रत्येक युगमें धर्म और भौतिक वस्तुओंका ह्रास होता रहता है। कलियुगमें प्रायः लोगोंकी आयु कम हो जाती है, उनकी बुद्धि साधन-भजनमें नहीं लगती। लोग श्रद्धाहीन और आलसी हो जाते हैं, भाग्य तो मन्द होता ही है और उनकी बुद्धि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका निर्णय नहीं कर पाती है। लोगोंकी ऐसी दुर्दशा देखकर श्रीव्यासदेवजीने विचार किया कि सभी वर्णाश्रम वालोंका कल्याण कैसे हो?

उन्होंने सोचा कि वैदिक चातुर्होत्र कर्म लोगोंके हृदयको शुद्ध करने वाला है। इसीलिये यज्ञोंके विस्तारके लिये एक ही वेदके विषयानुसार ऋक्, यजुः, साम और अथर्व चार विभाग कर दिये। इतिहास और पुराणोंको पञ्चम वेद कहा जाता है व्यासदेवजीने अपने शिष्योंमेंसे ऋग्वेदमें पैल, सामवेदमें जैमिनि, यजुर्वेदमें वैशम्पायन, अथर्ववेदमें सुमन्तु मुनि और इतिहास एवं पुराणोंमें रोमहर्षणको प्रवीण किया। इन ऋषियोंने अपने-अपने वेदोंके और भी विभाग करके अपने शिष्योंको दिये। इस प्रकार शिष्यों-प्रशिष्योंके द्वारा पुनः विभक्त वेदकी अनेक शाखाएँ बन गयीं। कम बुद्धिमान् व्यक्तियोंपर भी कृपा करनेके लिये भगवान् व्यासदेवजीने ऐसा किया, जिससे वे भी वेदोंको धारण कर सकें। व्यासदेवजीने अठारह पुराणोंकी रचना की, जिसमें छह पुराण तमोगुणी, छह पुराण रजोगुणी और छह पुराण सतोगुणी वृत्तिवाले व्यक्तियोंके लिये

बनाये। सतोगुणी पुराणोंमें श्रीविष्णुको, रजोगुणी पुराणोंमें ब्रह्माजीको और तमोगुणी पुराणोंमें शिवजीको सर्वश्रेष्ठ घोषितकर उनका गुणगान किया है। व्यासदेवजीने ऐसा इसलिये किया, क्योंकि गुणके अनुसार व्यक्तिकी वैसी ही श्रद्धा एवं पूजा विधिमें रुचि होती है। श्रीविष्णु, ब्रह्माजी और शिवजी क्रमशः सतो, रजो एवं तमोगुणोंके अधिष्ठाता हैं। व्यासदेवजीने पुराणोंका विभागकर सभीको अपने गुणोंके अनुसार अपने इष्टकी पूजासे क्रमशः उन्नति करते हुए अन्तमें शुद्ध-सत्त्वमें स्थित होकर निर्गुणाभक्ति लाभ करनेका सुयोग प्रदान किया है।

ऐसा महान जगत्-कल्याणकारी कार्य करनेपर भी व्यासदेवजीके हृदयमें सन्तोष नहीं हुआ। एक दिन खिन्न मनसे वे अपने आश्रममें बैठे हुए थे, तभी उनके गुरु श्रीनारदजी वहाँ उपस्थित हुए। उन्हें देखकर व्यासजीने नारदजीको बैठनेका आसन देकर उनकी विधिवत् पूजा की।

श्रीनारदजीने उन्हें कहा- "आपने इतना महत् कार्य सम्पन्न किया है और ब्रह्मतत्त्वको अच्छी तरहसे विचार करके समझ लिया है, तो आप अकृतार्थकी भाँति अपने विषयमें शोक क्यों कर रहे हैं?"

व्यासजीने कहा- "श्रील गुरुदेव! आपने मेरे विषयमें जो कुछ भी कहा है, वह ठीक है। परन्तु मेरा मन सन्तुष्ट नहीं है और मैं इसका कारण समझ नहीं पा रहा हूँ। आप समस्त गोपनीय रहस्योंको जानते हैं, क्योंकि आपने जगदीश्वरकी भली-भाँति उपासना की है। आप सर्वत्र विचरण करते हैं और योगबलसे प्राणवायुके समान सबके अन्तःकरणके साक्षी भी हैं। भजनके द्वारा परब्रह्म और व्रत-नियमोंके द्वारा शब्दब्रह्ममें पारङ्गत होकर भी मैं जो अभाव अनुभव कर रहा हूँ, उसका कारण कृपापूर्वक आप ही मुझे बतलायें।"

श्रीनारदजीने कहा- "हे महर्षे! आपने परम भगवान् श्रीकृष्णकी परम पवित्र लोक-मङ्गलकारी लीला-कथाओं एवं उनकी महिमाका स्पष्ट रूपसे कहीं भी वर्णन नहीं किया है। ऐसी भगवत्-लीला-कथाओंके कीर्त्तनके अतिरिक्त केवल धर्म तथा ज्ञानके अनुशीलनसे भगवान् सन्तुष्ट नहीं होते हैं। ऐसे धर्म और ज्ञानको मैं सदैव असम्पूर्ण समझता हूँ। आपने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चारोंको प्रधान-पुरुषार्थोंके रूपमें जैसा वर्णन किया है, वैसा भगवान् वासुदेवकी यशस्वी कथाओंका प्रधान रूपसे कहीं भी वर्णन नहीं किया है। वासनाशून्य ज्ञान जो मुक्तिको प्रदान करने वाला

है, यदि भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती है। फिर साधन और सिद्धावस्था दोनोंमें ही जो सदा ही अमङ्गलरूप है, वह काम्यकर्म किस प्रकार शोभा पा सकता है? संसारी लोग स्वाभाविक रूपसे विषयोंमें ही लिप्त रहते हैं। धर्मके नामपर आपने उन्हें निन्दित (पशुहिंसा-नशा आदि) सकाम कर्म करनेकी आज्ञा प्रदान की है। वे इसे ही मुख्य धर्मके रूपमें लेंगे और शास्त्रोंमें वर्णित निषेधोंकी उपेक्षा करके पापके भागी होंगे। हे महाभाग व्यासजी! आपकी दृष्टि अमोघ है। आप सत्यपरायण एवं दृढ़व्रत हैं। इसीलिये समाधि द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण कीजिये। भक्तिके द्वारा विशुद्ध मनमें भगवत्-लीला-कथाएँ स्वतः ही स्फुरित होती हैं। समस्त जीवोंके कल्याणके लिये विशेष रूपसे भगवान्की मधुर लीलाओंका वर्णन कीजिये, जिन्हें सुनकर वे भगवतपरायण हो जाँय। विद्वानोंका यह मत है कि समस्त तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान एवं दानका यही प्रयोजन है कि उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंमें मति लग जाय।"

अपने परमाराध्य गुरुदेव श्रीनारदजीसे अपने असन्तोषका कारण जानकर व्यासदेवजी समाधिस्थ हो गये। उन्होंने समाधिमें भगवान्की मधुर लीलाओंका दर्शन किया और परमहंसोंकी संहिता श्रीमद्भागवतमें इनका वर्णन किया। इसके श्रवणमात्रसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेममयी भक्ति हो जाती है, जिससे जीवके शोक, मोह और भय नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये व्यासजीने श्रीमद्भागवतको समस्त वेद-उपनिषद्-पुराणोंका परिपक्व फल कहा है।

जैसा कि पहले कहा गया है, व्यासजीने अन्य-अन्य पुराणोंमें शिव, ब्रह्मा और विष्णुकी महिमाको परमाराध्यके रूपमें वर्णन किया। अब वे श्रीमद्भागवतमें दिखलाते हैं कि पहले जिन गुणावतार, शक्त्यावेश अवतार, पुरुषावतार आदिके सम्बन्धमें अन्यान्य पुराणोंमें वर्णन किया गया है, वे सभी श्रीकृष्णके अंश अथवा अंशके अंश— कलायें हैं और श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् (अवतारी) हैं।

**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।**

(श्रीमद्भागवत १/३/२८)

श्रीकृष्णके अंशावतार सदाशिव हैं और सदाशिवके अंशावतार कैलाश निवासी शिव हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्यपूर्ण लीलाओंके द्वारा यह जाना

जाता है कि वे ही शिवजीके आराध्यदेव हैं, सदा-सर्वदा शिवजी उन्हें आराध्यके रूपमें आदर-सम्मान करते हैं।

आठ भौतिक आवरणोंके ऊपर विरजा नदी (जो अप्राकृत जगत्से प्राकृत जगत्को अलग करती है) को पारकर, मुक्तिलोकको भी पार करनेके उपरान्त शिवजीका लोक आता है। वहाँ शिवजी सदाशिवके नामसे जाने जाते हैं और ये भगवान् विष्णुके प्रकाश हैं। शिवतत्त्वको ब्रह्मसंहितामें वर्णित दूध और दहीके उदाहरणके द्वारा समझा जा सकता है। दही दूधका परिवर्तित रूप है। दूध तो दहीका रूप धारण कर सकता है, परन्तु दही कभी भी दूधका रूप धारण नहीं कर सकती है।

जैसे खटाईके संयोगसे दूध दहीमें परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण कुछ कार्य सम्पन्न करनेके लिये शम्भु(शिव)का रूप धारण करते हैं। यहाँ दहीका उदाहरण कारण और कार्यको स्पष्ट करनेके लिये ही दिया गया है। इस उदाहरणके द्वारा परिवर्तनशीलताको दिखनेकी चेष्टा नहीं की गयी है, क्योंकि श्रीकृष्ण ही परम सत्य हैं और उनका परिवर्तन कदापि सम्भव नहीं है, उनका स्वाभाविक रूप कभी विकृत नहीं होता। ठीक उसी प्रकार जैसे एक चिन्तामणि अपने स्वामीकी इच्छाके अनुसार अनेकों वस्तुओंको प्रकट कर सकती है, परन्तु उसका मूल रूप और स्वभाव पहले जैसा ही रहता है, उसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। इन सब वस्तुओंका प्रकाश चिन्तामणिकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे ही होता है।

## ऐश्वर्यगत विचार

समस्त शास्त्रोंके प्रमाणों अनुसार हमने अभी देखा कि श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। शिवजी उनके प्रकाश हैं। भगवान् इस धराधामपर अवतरित होकर अनेक प्रकारकी अलौकिक लीलाएँ करके अपना ऐश्वर्य प्रकाश करते हैं। शिवजी इन लीलाओंमें जो सहयोग करते हैं, उनका इस ऐश्वर्यगत विचारके अन्तर्गत विश्लेषण करेंगे। शिवजी भगवान् श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रिय भक्त हैं, इसी कारणसे वे भगवान्‌की ऐसी सेवाएँ करते हैं, जो और कोई नहीं कर पाते हैं। जिस समय देवता और दानव अमृत पानेके लिये क्षीरसागरका मन्थन कर रहे थे, तो सर्वप्रथम सागरसे

भयङ्कर हलाहल विष निकला, जिसके प्रभावसे सम्पूर्ण विश्व जलने लगा। देवतागण श्रीकृष्णकी शरणमें पहुँचे और श्रीकृष्णने उन्हें शिवजीके पास जानेका आदेश दिया। देवताओंने शिवजीकी स्तुति करते हुए कहा– "हे महादेव! इस कालकूट विषसे कृपया हमारी रक्षा कीजिये, केवल आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं।" भगवान् शिवने विश्वकी रक्षाके लिये उस विषको अपने मुखमें रख लिया, परन्तु उसे निगलनेसे पहले विचार करने लगे– "श्रीकृष्ण मेरे हृदयमें विराजमान हैं, इस विषसे उन्हें असुविधा होगी।" यह विचारकर उन्होंने विषको अपने कण्ठमें ही रख लिया, जिससे उनका कण्ठ जल गया और उसका रङ्ग नीला हो गया। भगवान्‌की ऐसी अद्भुत सेवा करके उनका रूप और बढ़ गया और उनका एक नाम 'नीलकण्ठ' हो गया।

इन लीलाओंमें यह भी देखा जाता है कि कभी-कभी शिवजी रावण, जयद्रथ, बाणासुर, शाल्व आदि भगवान् अथवा उनके भक्तोंके विरोधियोंको वरदान देकर शक्ति प्रदान करते हैं, उनका पक्ष लेते हैं, श्रीकृष्णसे घोर वैर मोल ले लेते हैं और कभी वृकासुर जैसे असुरोंको ऐसा वर दे देते हैं, जिससे वे स्वयं संकटमें पड़नेपर भगवान्‌की शरण ग्रहण करते हैं। परन्तु यह सब वे श्रीभगवान्‌की लीलाकी पुष्टिके लिये ही करते हैं और यथार्थमें वे असुरोंके साथ छल ही करते हैं। आगेके अध्यायोंमें इन सबका विस्तारसे वर्णन किया जायेगा।

## नरवत् विचार

नरवत् लीलाके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण एवं श्रीरामचन्द्रकी लीला एक साधारण मनुष्यकी भाँति है। जब भगवान् श्रीरामचन्द्र नरलीला कर रहे थे, तो उनका व्यवहार एक साधारण मनुष्य जैसा था। रावणके चंगुलसे सीताजीको छुड़ानेके लिये वे सागरके तटपर खड़े होकर विचार कर रहे थे कि कैसे मैं इसे लाङ्घकर लङ्का पहुँचूँ? उन्होंने सोचा कि मुझमें तो इतना सामर्थ्य नहीं है, परन्तु यदि मैं शिवजीको प्रसन्न कर लूँ, तो उनकी कृपासे यह सम्भव हो सकेगा। इसीलिये वे शक्ति प्राप्त करनेके लिये, रामेश्वर महादेवकी प्रतिष्ठा करके उनकी आराधना करने लगे।

यह देखकर साधारण मनुष्य शिवजीका गुणगान करने लगे और

कहने लगे- "**रामस्य ईश्वरः,** अर्थात् श्रीरामके ईश्वर, रामेश्वरकी जय हो! आप ही श्रीरामके आराध्य हैं, इसलिये आपका नाम रामेश्वर है।" तभी सभी देवतागण प्रकट होकर कहने लगे- "**रामश्च असौ ईश्वरौ,** श्रीराम भी ईश्वर हैं और शिवजी भी ईश्वर हैं, उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही भगवान् हैं, अति श्रेष्ठ हैं। साधारण मनुष्य सोचते हैं कि रामेश्वर ही श्रीरामके आराध्यदेव हैं, परन्तु वे बुद्धिमान् नहीं हैं, यह सत्य नहीं है।" उसी समय भगवान् शिवको यह सुनकर और अधिक सहन नहीं हुआ और वे शिवलिङ्गसे प्रकट होकर कहने लगे- "नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं है। सत्य समझनेका प्रयास करो, '**रामः यस्य ईश्वरः स रामेश्वरः**', भगवान् श्रीराम ही जिसके ईश्वर हैं- वही रामेश्वर हैं। श्रीराम ही मेरे प्रभु हैं और मैं उनका नित्य दास हूँ।"

श्रीवामनावतारमें भगवान् श्रीरामने एक पगमें ही समस्त पृथ्वीको नाप लिया था, तो उनके लिये समुद्रको लाङ्घना कैसे असम्भव हो सकता था? यह सब वे जगत्में अपने प्रिय भक्त शिवजीकी महिमाको स्थापित करनेके लिये कर रहे थे, क्योंकि भक्तवत्सलता भगवान्‌का एक महान गुण है।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी बाल्य-लीलाओंमें भी देखा जाता है कि वे सदा अपने माता-पितापर सब प्रकारसे निर्भर हैं और वे ही उनका पालन-पोषण करते हैं। शिवजी उनकी ऐसी मधुर लीलाओंका आस्वादन करनेके लिये गोकुलमें आते हैं और भगवान् श्रीकृष्णको नरवत्‌लीलाके अनुरूप अनेकों आशीर्वाद देते हैं। पुराणोंमें भी ऐसा देखा जाता है कि जिस समय श्रीकृष्ण द्वारकाके राजा थे, उस समय उन्होंने अपनी पत्नी जाम्बवन्तीसे पुत्र प्राप्तिकी कामनासे शिवजीकी उपासना की थी। यद्यपि शिवजी भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा इन लीलाओंमें पूजित हैं, तो भी उन्हें सदा यह आभास रहता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं और वे उनके नित्य दास हैं। इन सत्योंका ज्ञान होना परम आवश्यक है। जो इन तथ्योंको जानता है, वही शिवजी और भगवान् श्रीकृष्णके यथार्थ सम्बन्धको दूसरोंको समझानेमें समर्थ है।

# अध्याय २
# (असुरोंको वरदान)

एक समय नारदजी भगवान् श्रीकृष्णके सर्वश्रेष्ठ भक्तकी खोजमें निकले। अनेक भक्तोंसे मिलने और उन्हें परखनेके पश्चात् वे शिवलोकमें पहुँचे। शिवजीके दर्शन करके उनकी महिमाका गुणगान करने लगे-"आप भगवान् श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रिय हैं। इतना ही नहीं आप स्वयं उनके प्रकाश हैं, उनसे अभिन्न हैं। मुक्तिके साथ-साथ आप कृष्ण-प्रेम देनेमें भी समर्थ हैं।"

नारदजीसे अपनी प्रशंसा सुनकर शिवजी कुछ क्रोधितसे हो गये। वे कुछ समय मौन रहनेके पश्चात् अत्यन्त विनम्रताके साथ बोले-"नारदजी! मैं श्रीकृष्णका प्रिय भक्त बननेकी इच्छा तो करता हूँ, परन्तु वास्तवमें मैं उनका प्रिय नहीं हूँ। यदि मैं उनका प्रिय होता, तो क्या वे मुझे तमोगुणका नियन्ता बनाकर सृष्टिके विनाश कार्यमें लगाते? आप तो जानते ही हैं कि मेरी उपासना करनेवाले असुर, जो भगवान् श्रीकृष्ण और उनके भक्तोंसे द्वेष करते हैं, मैं उन्हें भी वर दे देता हूँ। मुझसे वर प्राप्त करके ये लोग भक्तोंको सताते हैं। मैं श्रीकृष्णकी सेवा करनेकी अपेक्षा उन्हें कष्ट ही प्रदान करता हूँ। इसीलिये मैं उनका प्रिय कैसे हो सकता हूँ? यदि मैं वास्तवमें उनका कृपापात्र होता, तो क्या वे मुझे शङ्कराचार्यके रूपमें मायावादका प्रचार करनेकी आज्ञा देते, जो कृष्णभक्तिका सम्पूर्ण विरोधी है।"

यद्यपि यहाँ शिवजी इस प्रकार कह रहे हैं, परन्तु वास्तवमें सत्य यही है कि श्रीकृष्ण उन्हें शङ्कराचार्य रूपमें अवतरित होनेका दायित्व इसलिये सौंपा, क्योंकि वे उनके अत्यन्त प्रिय हैं और यह कार्य किसी दूसरेके द्वारा सम्भव भी नहीं है। उस समय बहुतसे लोगोंने केवल स्वार्थसिद्धिके लिये भगवान्की पूजा-अर्चना आरम्भ कर दी थी। वे सोचते थे कि उनकी पूजा-अर्चनासे प्रसन्न होकर भगवान् उनकी समस्त सांसारिक इच्छाएँ पूरी कर देंगे। वे भगवान्की पूजा केवल अपनी वासनापूर्तिके लिये ही करते थे, न कि भगवान्की सेवाके लिये। भगवान् श्रीकृष्णने

विचार किया कि यह तो अत्यन्त गम्भीर स्थिति है, तब उन्होंने शिवजीको बुलाकर आदेश दिया– "इस प्रकारके ढोंगी भक्त जगत्में उत्पात मचा देंगे, इसीलिये इन्हें मुझसे दूर रखो। ऐसे तत्त्वोंका प्रचार करो जो इस प्रकारकी शिक्षा दे कि 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरम्।' इस प्रकारका प्रचार करो कि सभी आत्माएँ शिव हैं, सभी आत्माएँ ब्रह्म हैं, सभी एक हैं और तुम निर्विशेष हो। किसी अन्य भगवान्‌को पूजनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुम स्वयं परम भगवान् हो।"

नारदजी बोले– "प्रभो। मुझे भ्रमित करनेकी चेष्टा न करें। मैं जानता हूँ कि आप जो कुछ भी करते हैं वह श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और उनकी लीलाओंकी पुष्टिके लिये ही करते हैं और यह सब कार्य सभी प्राणियोंके लिये हितकर होते हैं। श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तोंके शत्रु आपसे वर पानेकी लालसासे आपकी स्तुति करते हैं और आप उनके मनोवाञ्छित वर उन्हें प्रदान कर देते हैं, परन्तु ये वर अन्तमें माँगनेवाले पर ही भारी पड़ते हैं। वास्तवमें आप श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये ही इन उपासकोंको छलते हैं। आप निश्चित ही श्रीकृष्णके प्रियतम मित्र हैं, भक्त हैं।"

नारदजीका कथन सत्य है और शास्त्रोंमें अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो इस बातकी पुष्टि करते हैं। यहाँ कुछ ऐसे ही उदाहरण दिये जा रहे हैं यथा जयद्रथ, शाल्व, रावण, वृकासुर, बाणसुर, पौण्ड्रक वासुदेव आदि। ये सभी असुर शिवजीसे वर प्राप्तकर उत्पाती हो गये थे, परन्तु अन्तमें सभी भगवान् श्रीकृष्ण अथवा श्रीरामचन्द्रके हाथों परास्त हुए अथवा मारे गये।

## राजा जयद्रथको वरदान

पाँचवें वेद महाभारतमें राजा जयद्रथका नाम आता है। वह उन असुरोंमें से एक था, जिन्होंने चतुराईसे अपना मनोवाञ्छित वर शिवजीसे प्राप्त किया था। दुर्योधनकी बहन दुशालाका विवाह जयद्रथसे होनेके कारण वह नातेमें पाण्डवोंका भी बहनोई लगता था। पाण्डवोंके वनवासमें रहते हुए एक समय जयद्रथने द्रौपदीको अपनी रानी बनानेकी इच्छासे उसका अपहरण करनेकी चेष्टा की। जैसे ही वह बलपूर्वक उसे रथपर बैठाने

लगा, द्रौपदी उसकी भर्त्सना करते हुए बोली- "मैं पाण्डवोंकी धर्मपत्नी हूँ, मुझे छोड़ दो अन्यथा वे तुम्हें पकड़कर तुम्हारा वधकर देंगे।"

अपने बलके गर्वमें चूर जयद्रथने द्रौपदीके शब्द अनसुने कर दिये और बलपूर्वक उसे अपने रथमें बैठाकर ले जाने लगा। नारदजीने जयद्रथको द्रौपदीका अपहरण करके ले जाते देखा, तो वे तुरन्त पाण्डवोंके पास आये और कहा- "आप यहाँ सुखपूर्वक बैठे हैं और मैंने अभी जयद्रथको अपने रथमें द्रौपदीका हरण करके ले जाते देखा है, वह जोर-जोरसे विलापकर रो रही थी।"

यह सुनते ही भीम और अर्जुनने तुरन्त ही जयद्रथका पीछा किया। भीम अपने रथसे उतरकर जयद्रथके घोड़ोंसे भी अधिक वेगसे दौड़े और अर्जुनने अपने बाणोंसे उसके रथके चारों ओर आग लगा दी, जिससे उसके घोड़े आगे नहीं बढ़ सके।

इस प्रकार जयद्रथके लिये सभी मार्ग अवरुद्ध हो गये और उसे बन्दी बनाकर भीमने अपनी गदासे उसपर प्रहार किये। तत्पश्चात् उसे रस्सीसे बाँधकर रथके साथ घसीटते हुए लाकर महाराज युधिष्ठिरके चरणोंमें डाल दिया।

भीमने कहा कि- "मैं जयद्रथको प्राणदण्ड दूँगा, कृपया मुझे इसकी अनुमति दे दीजिये।" अर्जुनने भी कहा कि इसने बहुत ही जघन्य अपराध किया है, अतः इसे प्राणदण्ड ही मिलना चाहिये।

महाराज युधिष्ठिरने विचार करके कहा- "इसने द्रौपदीके प्रति अपराध किया है, इसीलिये इस विषयमें उसका विचार भी तो जानना चाहिये।"

जब जयद्रथको द्रौपदीके सामने लाया गया, तो उसके हृदयमें दया आ गयी और वह बोली- "इसे मत मारो, इसे क्षमा कर दो। यह हमारा बहनोई है। यदि आप इसे प्राणदण्ड देंगे, तो हमारी इकलौती बहन विधवा हो जायेगी और जीवन भर रोयेगी और विलाप करेगी।"

तब भीम और अर्जुन श्रीकृष्णके पास गये और पूछने लगे कि उन्हें अब क्या करना चाहिये? वे बोले कि आप हमारा मार्गदर्शन कीजिये, क्योंकि हमने जयद्रथका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है और द्रौपदी उसे क्षमा करनेके लिये कह रही है, ऐसा निर्णय करें कि हमारी बात भी

रहे और द्रौपदीकी बात भी झूठी न हो। श्रीकृष्णने कहा- "आदरणीय व्यक्तिके लिये अपमान तो मृत्युसे भी बुरा है।"

तब अर्जुनने जयद्रथकी केवल पाँच चोटी रखकर उसके बाकी शीशका मुण्डन कर दिया और उसकी एक ओरकी दाढ़ी काटकर दूसरी ओरकी वैसे ही छोड़ दी।

जयद्रथ इससे अत्यन्त अपमानित हुआ और मुक्त होनेपर सोचने लगा कि इससे तो मृत्यु ही अच्छी थी, मैं दुर्योधन आदिको अपना मुख कैसे दिखाऊँगा? उसने मन-ही-मन सोचा- "मैं पाण्डवोंको नहीं छोड़ूँगा, इसका प्रतिशोध अवश्य ही लूँगा।"

इस प्रकार सोचते हुए वह भगवान् शिवको प्रसन्न करनेके लिये हिमालय स्थित गङ्गोत्रीपर कड़ी तपस्या करने लगा। कुछ माह पश्चात् उसने भोजन त्याग दिया, केवल जलसे ही जीवन धारण करने लगा। कुछ समय पश्चात् जल भी त्याग दिया, केवल वायुपर ही जीवन धारण करने लगा। इतनेसे भी जब शिवजी प्रकट नहीं हुए, तो समस्त शारीरिक क्रियाओंको भी छोड़कर प्राण त्यागनेवाला ही था कि शिवजी उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उसे वरदान देनेके लिये प्रकट हो गये।

जयद्रथने कहा- "मैं पाण्डवोंसे प्रतिशोध लेना चाहता हूँ, क्योंकि उन्होंने मेरा बहुत अपमान किया है। मैं उन सबको युद्धमें पराजित करके उनका वध करना चाहता हूँ।"

शिवजी बोले- "मैं तुम्हें यह वर दे सकता हूँ कि तुम चार पाण्डवों युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेवको पराजित कर सकोगे, किन्तु अर्जुनको परास्त करनेकी तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी।"

जयद्रथने कहा-"यदि आप मुझे मेरा मनोवाञ्छित वरदान प्रदान नहीं करना चाहते, तो यही वर दीजिये कि न तो अर्जुन और न ही कोई और मेरा वध कर सके।"

भगवान् शिव बोले- "मैं तुम्हें एक अन्य वर दे सकता हूँ कि यदि कोई व्यक्ति तुम्हारा सिर धड़से अलग कर दे, तो वह पुनः पहलेकी भाँति जुड़ जायेगा। तुम जीवित रहोगे और इस प्रकार तुम्हारा वध करने वाला मृत्युको प्राप्त होगा। तुम्हारी मृत्यु तभी होगी, जब तुम्हारा कटा हुआ सिर तुम्हारे पिता स्वयं अपने हाथोंसे पृथ्वीपर फेंक दें।"

जयद्रथ यह वर पाकर फूला नहीं समाया और यह सोचकर वर स्वीकार कर लिया कि "मेरे पिता कदापि ऐसा नहीं करेंगे और निश्चिन्त होकर वापिस लौट आया।

जब कुरुक्षेत्रमें युद्ध प्रारम्भ हुआ, तो जयद्रथने पाण्डवोंके विरोधी दुर्योधनकी ओरसे युद्ध किया। युद्धके मध्य अर्जुनके लाडले बेटे और भगवान् श्रीकृष्णके भान्जे अभिमन्युके वधके दिन संध्याके समय जयद्रथके पिताजी आविष्ट होकर सूर्यदेवको जल अर्पण कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णके कहनेपर अर्जुनने इस सुनहरे अवसरको हाथसे निकलने नहीं दिया और ऐसी कुशलतापूर्वक बाण चलाया कि जयद्रथका सिर कटकर उसके पिताके हाथोंमें जा गिरा। अचम्भित होकर बिना सोचे समझे कि वह क्या वस्तु है, उन्होंने वह सिर पृथ्वीपर फेंक दिया।

इसके पश्चात् उन्होंने आँखें खोली और चिन्तन करने लगे कि क्या वस्तु उनके हाथोंमें आयी थी? तभी अपने पुत्रका सिर पृथ्वीपर पड़ा देखकर शोकातुर हो विलाप करने लगे- "हे पुत्र! हे पुत्र! तुम कहाँ हो, तुम कहाँ हो?" और पुत्र शोकमें उन्होंने भी अपने प्राण त्याग दिये।

इस प्रकार शिवजीसे वर प्राप्त करके भी दुष्ट जयद्रथ पाण्डवोंको पराजित करनेके बदले स्वयं ही मृत्युका ग्रास बना।

## शाल्वको वरदान

रुक्मीने अपनी बहन रुक्मिणीजीका विवाह चेदीराज शिशुपालके साथ करनेका निश्चय कर लिया था और इस विवाहमें भाग लेनेके लिये शिशुपालका मित्र शाल्व भी आया था। परन्तु रुक्मिणीजी तो श्रीकृष्णसे विवाह करना चाहती थीं, इसीलिये रात ही रातमें बिना किसीके कानमें भनक पड़े एक ब्राह्मणके द्वारा उन्हें सन्देश भेजा कि वे स्वयं आकर उनका अपहरण कर लें। रुक्मिणीजीका सन्देश पाकर श्रीकृष्ण क्षणकाल भी विलम्ब न करके तुरन्त ही रथपर सवार होकर विदर्भ देश पहुँच गये।

विवाहके दिन प्रातःकालमें रुक्मिणीजी अन्तःपुरसे निकलकर देवी भवानीके दर्शनोंके लिये पैदल ही चलीं। उनकी रक्षाके लिये चारों ओर सशस्त्र सैनिक चल रहे थे। सखियों और माताओंसे घिरी वे मौन थीं।

वे बहुत धीरे-धीरे चल रही थीं और सभी लोग सोच रहे थे कि विवाहकी घड़ी आने वाली है, इसलिये आनन्दके मारे शरमाती और सकुचाती हुई धीरे-धीरे चल रही होंगी। मंदिर पहुँचकर देवीको प्रणामकर उन्होंने मन-ही-मन देवी भगवतीसे प्रार्थना की- "हे अम्बिका माता! आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि बिना किसी कठिनाईके मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जाय। भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों।" भगवान् श्रीकृष्णकी आतुरतासे प्रतीक्षा करते हुए रुक्मिणीजी मंदिरसे अपने महलकी ओर ध ीरे-धीरे पैदल चलने लगीं। उसी समय उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए और भगवान् श्रीकृष्णने सभी राजाओंके देखते-ही-देखते रुक्मिणीजीको अपने रथपर बैठा लिया। जैसे सिंह सियारोंके बीचमेंसे अपना भाग ले जाय, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीको लेकर चल दिये। उन्हें रोकनेके लिये एकत्रित राजाओंने अस्त्र-शस्त्र उठाकर उनपर आक्रमण तो अवश्य किया, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे उनकी सेनाको बुरी तरहसे परास्त कर दिया और शिशुपाल, जरासन्ध आदि सभी राजा युद्धसे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीको द्वारका ले आये और उनसे वैदिक रीतिके अनुसार विवाह किया।

इधर हारे हुए सभी राजा सभामें एकत्रित हुए और विचार करने लगे कि इस पराजयका प्रतिशोध कैसे लिया जाय? उस सभामें शाल्वने सब राजाओंके समक्ष यह प्रतिज्ञा की- "मैं अपने पराक्रमके बलपर शीघ्र ही पृथ्वीको यदुवंशियोंसे विहीन कर दूँगा।"

यदुवंशियोंका वध करनेकी शक्ति प्राप्त करनेकी इच्छासे दैत्य शाल्वने भी भगवान् शिवकी शरण ग्रहण की। उसने कड़ी तपस्या की। प्रतिदिन वह मुट्ठी भर राखका ही सेवन करता था। एक वर्षकी कड़ी तपस्याके उपरान्त शिवजीने प्रसन्न होकर उसे वर माँगनेको कहा।

शाल्वने भगवान् शिवसे वायुयान प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट करते हुए कहा- "मैं चाहता हूँ कि वह वायुयान मेरे मनके अनुरूप कार्य करे। स्वर्ग अथवा जिस किसी स्थानपर मैं जानेकी इच्छा करूँ, वह मुझे वहाँ पहुँचा दे। ग्रीष्म ऋतुमें वह शीतल हो और शीत ऋतुमें गरम हो। यदि दो व्यक्ति यात्रा करना चाहें, तो वह छोटा हो जाय और यदि हजारों-लाखों व्यक्तियोंके साथ यात्रा करना चाहूँ, तो वह उसके अनुसार विशालाकार बन जाय। देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग आदि किसीके

द्वारा कभी भी वह नष्ट न हो और वह सभी अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त हो। यदुवंशियोंके लिये वह भय और आतङ्कका कारण हो।"

भगवान् शिवने उसकी इच्छा पूर्ण की और शाल्वने मयदानवकी सहायतासे ऐसा एक मायावी वायुयान तैयार करके द्वारकापर आक्रमण कर दिया। शाल्वने स्वयं आकाशसे और उसके सैनिकोंने भूमिसे आक्रमण किया। द्वारकाकी रक्षाके लिये प्रद्युम्नके नेतृत्वमें यदुवंशियोंने युद्धमें भाग लिया, परन्तु वे शाल्वको पराजित नहीं कर पा रहे थे।

अन्ततः स्वयं श्रीकृष्ण युद्धभूमिमें आये। दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ। शाल्व अपनी मायावी कलाका प्रदर्शन करने लगा। कभी वह प्रकट होता और कभी वह छिप जाता। श्रीकृष्णने अपने बाणों और गदासे उसके विमानको जर्जरित कर दिया। तब शाल्व विमानसे कूदकर नीचे आकर युद्ध करने लगा। अन्तमें श्रीकृष्णने अपने सुदर्शन चक्रसे उस दैत्यका सिर धड़से अलग कर दिया, उसके प्राण पखेरू उड़ गये और इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने शाल्वको मुक्ति प्रदान की।

## रावणको वरदान

रावण जन्मसे ही अत्यन्त बलशाली था। एक बार शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये उसने एक-एक करके दस बार अपने सिरको काटकर शिवजीके लिये आहूति दे दी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजी बोले- "तुम्हारे दस शीश होंगे। कोई भी तुम्हारे शीशको काटेगा, तो वह पुनः जुड़ जायेगा।" तभीसे रावण दशग्रीव या दशाननके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन उसकी माता कैकसीने उसे कहा कि देखो तुम्हारा सौतेला भाई कुबेर कैसा तेजस्वी दिखता है, इसीलिये तुम भी कोई ऐसा यत्न करो जिससे उसकी भाँति तेज और वैभवसे सम्पन्न हो जाओ। तब दशाननने दस हजार वर्षतक निराहार रहकर तपस्या की और ब्रह्माजीसे अतुल बल, दीर्घ आयु तथा मनचाहा रूप धारण करनेकी शक्ति प्राप्त की। यह वरदान पाकर उसने कुबेरको सोनेकी लङ्कासे निकालकर उसपर अपना अधिकार जमा लिया। कुबेर लङ्का छोड़कर कैलाशपर वास करने लगे।

दशानन ऋषियों, मुनियों तथा देवताओंको सताने लगा, यज्ञोंको ध्वंस करने लगा और उसने देवताओंके नन्दनवनको उजाड़ दिया। कुबेरने जब यह वृत्तान्त सुना, तो अपने भाईके कल्याणके लिये अपने दूत द्वारा एक सन्देश भेजा कि– "मैंने अनेक वर्ष तपस्या करके महादेव शिवजीको प्रसन्नकर उनसे मित्रता की है। तुम यह सभी उत्पात बन्द कर दो, क्योंकि ऋषि और देवता तुम्हारे विरुद्ध षडयन्त्र करके तुम्हारे वधका उपाय सोच रहे हैं।" यह सुनकर दशानन क्रोधसे लाल-पीला हो गया और बोला– "कुबेर मुझे महादेवके साथ मित्रताका संवाद सुनाकर डराना चाहता है, वह नहीं जानता है कि मैं अपने बाहुबलसे सभी लोकोंको जीत सकता हूँ।" दूतका कभी भी वध नहीं करना चाहिये, फिर भी उस राक्षसने अपनी तलवारसे उस दूतके दो टुकड़े कर दिये और उसके शरीरको अपने राक्षसोंको खानेको दे दिया।

तब दशाननने राक्षसोंकी सेना लेकर कैलाशपर चढ़ाई कर दी। दशानन और कुबेरके बीच बहुत भयङ्कर युद्ध हुआ। दशानन अनेक रूप धारणकर कुबेरके सामने आता, परन्तु अपने वास्तविक रूपमें कभी दिखाई नहीं देता। कुबेर युद्ध करते हुए बहुत थक गये, तो दशाननने अपनी गदासे उसपर कठोर प्रहार किया। कुबेर मूर्छित होकर गिर पड़े, तब देवता उन्हें उठाकर नन्दनवन ले गये। दशाननने कुबेरके पुष्पक विमानपर अधिकार कर लिया। वह विमान चालककी इच्छानुसार चलता था। पुष्पक विमानमें सवार होकर वह आकाशमें विचरण करने लगा और एक सुन्दर शरवण (सरकंडोंका वन) को देखकर उसकी ओर जाने लगा। उसके निकट पहुँचते ही वह विमान रुक गया, आगे बड़ा ही नहीं। इससे दशाननको अति आश्चर्य हुआ और वह मन्त्रियोंसे इसका कारण पूछने लगा।

तभी मारीचने कहा– "यह विमान कुबेरका है, हो सकता है कि उसकी अनुपस्थितिमें यह न चले।"

इतनेमें उन्होंने देखा कि पर्वतके ऊपर शङ्करजीके पार्षद नन्दीश्वर खड़े हैं। नन्दीश्वरने दशाननसे कहा– "यहाँ भगवान् शङ्कर क्रीड़ा करते हैं और यहाँ सुपर्ण, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व तथा राक्षस सभी प्राणियोंका आना-जाना निषेध है।"

यह सुनकर दशानन क्रोधित होकर बोला– "कहाँ है तेरा शङ्कर?"

यह कहकर वह विमानसे उतरकर पर्वतके मूल भागमें आ गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि शङ्करजीसे थोड़ी दूर चमचमाता त्रिशूल लेकर उनके ही समान नन्दी खड़े हैं और उनका मुख वानर जैसा है। उन्हें देखकर दशानन ठहाका मारकर हँसने लगा। इससे कुपित होकर नन्दीजीने कहा- "तुमने वानर रूप देखकर मेरी अवहेलना की है। अतः तुम्हारे कुलका विनाश करनेके लिये मेरे ही समान बल और तेजसे सम्पन्न वानर उत्पन्न होंगे। उनके दाँत और नख ही उनके अस्त्र होंगे। वे तुम्हारे सम्पूर्ण कुलका विनाश कर देंगे।"

दशाननने नन्दीके वचनोंकी अवहेलना करते हुए कहा- "देख तू देख, जिस पर्वतके कारण मेरे विमानकी गति रुक गयी है, उसे मैं जड़से उखाड़ फेंकूँगा, अगर तुझमें सामर्थ्य हो तो रोक ले।" यह कहकर वह अपनी भुजाएँ पर्वतके नीचे लगाकर उसे उठानेका भरसक प्रयास करने लगा। पर्वतके हिलनेसे शङ्करजीके सारे गण भयभीत हो गये और पार्वतीजी भी विचलित होकर भगवान् शङ्करसे लिपट गयीं। तब देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ महादेव समझ गये कि यह दशाननकी करतूत है। तब उन्होंने अपने पैरके अगूँठेसे पर्वतको थोड़ासा दबा दिया।

फिर तो दशाननकी भुजाएँ, जो पर्वतके खम्बेके समान जान पड़ती थीं, उस पर्वतके नीचे दब गयीं। उस राक्षसने रोष और पीड़ाके कारण बड़े जोरसे रोदन और आर्तनाद किया, जिसे सुनकर तीनों लोकोंके प्राणी काँप उठे। तदनन्तर दशाननके मन्त्रियोंने कहा- "अब आप महादेवजीको सन्तुष्ट कीजिये। उनके अतिरिक्त आपको कोई भी शरण नहीं दे सकता, बचा नहीं सकता। आप स्तुति द्वारा प्रणामकर उनकी शरणमें जाइये। वे अत्यन्त दयालु हैं, वे शीघ्र ही सन्तुष्ट होकर आपपर कृपा करेंगे।"

मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर और कोई उपाय न देखकर दशाननने भगवान् शङ्करको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्त्रोतों तथा सामवेदोक्त मन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति की। इस प्रकार हाथोंकी पीड़ासे रोते और स्तुति करते एक हजार वर्ष बीत गये। तत्पश्चात् उस पर्वतके शिखरपर महादेवजी प्रकट हो गये।

उन्होंने दशाननको सङ्कटसे मुक्त करते हुए कहा- "तुम अत्यन्त वीर हो। पर्वतके नीचे तुम्हारी भुजाएँ दब जानेसे तुमने जो राव किया था, उससे भयभीत होकर समस्त प्राणी रो पड़े थे, इसीलिये तुम्हारा नाम

रावण होगा। समस्त लोकोंको रुलाने वाले तुझ दशाननको लोग रावण कहेंगे।"

रावणने कहा- "आप मुझपर प्रसन्न हैं, यह मैं कैसे समझूँ? यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं, तो मुझे कुछ वरदान दीजिये।" शिवजीने कहा- "अच्छा, मुँहमाँगा वर माँग लो।" रावणने कहा- "हे त्रिपुरारि! ब्रह्माजीने मुझे जो आयु प्रदान की थी, उसमें जो बीत गयी है वह आप मुझे पुनः प्रदान कीजिये। साथ ही आप मुझे कोई शस्त्र भी प्रदान कीजिये।"

रावणकी ऐसी प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने कहा- "मैं तुम्हारी आयुका जो अंश बीत गया है, उसे पूर्ण करता हूँ और मेरी यह अमोघ- कभी न व्यर्थ होने वाली चन्द्रहास खड्ग तुम्हें प्रदान करता हूँ। परन्तु सावधान, तुम इसका कभी भी तिरस्कार मत करना अन्यथा यह तुम्हें छोड़कर मेरे पास पुनः लौट आयेगी।"

इस प्रकार भगवान् शङ्करसे वरदान पाकर रावण अपने पुष्पक विमानमें चढ़कर समस्त पृथ्वीपर दिग्विजयके लिये भ्रमण करने लगा। अपने बलके अभिमानमें चूर होकर वह असुर ऋषियों-मुनियोंको सताने और मारने लगा। इस प्रकार उसके पापोंमें दिन दोगुणा रात चौगुणा वृद्धि होती गयी और अन्तमें वह भगवान् श्रीरामके हाथों मारा गया।

## मय दानव

भगवान् शिवकी लीलाएँ हम सभीको भगवान् श्रीकृष्णकी भगवत्ता दिखानेके लिये और प्रत्येक जीवको भगवान्की सेवा और शरणागतिकी ओर अग्रसर करनेके लिये हैं। यह घटना भी इसका एक उदाहरण है। एक बार देवताओंका दैत्योंके साथ घमासान युद्ध हुआ और दैत्य हार गये। तब दैत्योंने अपने बड़े भाई मयदानवकी शरण ली। उसने दैत्योंके लिये तीन अद्भुत हवाई महल बना दिये। तब सारे-के-सारे दैत्य हवाई महलके मद्से चूर होकर सभी लोकोंको बहुत सताने लगे। जब दैत्योंने उच्च लोकोंको सताना आरम्भ किया, तो उन लोकोंके स्वामी भगवान् शिवके पास गये और शरणागत होकर कहने लगे- "हे प्रभो! देवताओंके ऊपर भयङ्कर विपत्ति आयी है, हम आपके शरणागत हैं, कृपया हमारी रक्षा कीजिये।"

भगवान् शिवने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा- "डरो मत, निर्भय हो जाओ।" तब उन्होंने अपने बाणोंको धनुषपर चढ़ाकर राक्षसोंके तीनों हवाई आवासोंकी ओर छोड़ा और सारे राक्षस मारे गये। तब मायावी मयदानवने मृत राक्षसोंके शरीरोंको अपने बनाये हुए अमृतके कूपमें डाल दिया, जिससे वे पुनः जीवित और अजेय हो गये।

अब तो शिवजी बहुत चिन्तित हो गये कि क्या किया जाय? यह देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने विष्णु रूपमें शिवजीकी राक्षसोंको मारनेमें सहायता करनेका विचार किया। तब भगवान् विष्णु गाय और ब्रह्माजी बछड़ेका रूप धारण करके राक्षसोंके लोकमें घुस गये। गाय-बछड़ेको चरते देखकर राक्षसोंको किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं हुआ। वे चरते-चरते कुँएके पास आ पहुँचे और कुँएका सारा अमृत पी गये।

तब भगवान् श्रीकृष्णने धर्मसे रथ, ज्ञानसे सारथी, वैराग्यसे ध्वजा, ऐश्वर्यसे घोड़े, तपस्यासे धनुष, विद्यासे कवच, क्रियासे बाण आदि सामग्रीके द्वारा भगवान् शिवको युद्धके लिये प्रशस्त किया। तब शिवजीने रथपर चढ़कर युद्धके लिये प्रस्थान किया।

शिवजीने राक्षसोंके तीनों लोकोंको नष्ट कर दिया। उच्च लोकोंके वासी शिवजीकी प्रशंसा और स्तुति करने लगे। अब शिवजी त्रिपुरारिके नामसे विख्यात हो गये, जिसका अर्थ है- 'राक्षसोंके तीनों लोकोंका विनाश करने वाले।'

यहाँ यह शिक्षा है कि यदि हम भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत हैं, तो वे सदा हमारी रक्षा करेंगे, भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं गीतामें ऐसी प्रतिज्ञा की है। यदि हम अपना सारा दायित्व भगवान्‌को सौंप दें, केवल भरण-पोषणका ही नहीं वरन् अपनी बुद्धि, इन्द्रियाँ और जो कुछ भी हमारे पास है, उन सबका, तो भगवान् स्वयं हमारा सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेंगे, हमारा पालन-पोषण करेंगे और सदा रक्षा भी करेंगे। किसी प्रकारका शोक और भय हमें छू भी नहीं सकेगा। इसके अतिरिक्त हम भक्तिराज्यमें प्रवेशके अधिकारी बनकर सदाके लिये सुखी हो जायेंगे।

## वृकासुरको वरदान

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णन आता है कि महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे एक बार यह प्रश्न किया था कि आप स्वयं लक्ष्मीपति हैं, परम ऐश्वर्यमय वैकुण्ठमें निवास करते हैं, परन्तु आपके भक्त प्रायः निर्धन होते हैं और शिवजी जिन्होंने समस्त भोगोंका परित्याग किया हुआ है, जो भी देवता, मनुष्य और असुर उनकी उपासना करते हैं, वे प्रायः धनी और भोगसम्पन्न हो जाते हैं। ऐसे विरोधाभाससे मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा- "ब्रह्मा और महादेव आदि देवता शीघ्र प्रसन्न होकर वरदान एवं रुष्ट होकर शाप दे देते हैं, परन्तु मैं ऐसा नहीं हूँ। मैं अपने उपासकके परम श्रेयके अनुरूप वरदान देता हूँ। मैं जिसपर कृपा करता हूँ, कभी तो उसका सारा धन हरण कर लेता हूँ और जब वह संसारसे निराश हो जाता है, तब मैं अपने भक्तोंका सङ्ग उसे प्रदान करके अपनी भक्ति दे देता हूँ और साथ ही अपनी अहैतुकी कृपाकी वर्षा करता हूँ। ब्रह्मा और महादेव वर देते समय अपने उपासकके कल्याण और अकल्याणका विचार नहीं करते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी अपने वरदानके कारण वे स्वयं भी बुरी तरहसे विपत्तिमें फंस जाते हैं।" इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने वृकासुरका वृत्तान्त सुनाया।

वृकासुर नामका एक राक्षस था। उसने नारदजीसे एक बार पूछा कि कौनसे देवता शीघ्र प्रसन्न होकर वर दे देते हैं। नारदजीने कहा- "तुम शिवजीकी उपासना करो, उनसे जल्दी प्रसन्न होनेवाला और कोई भी नहीं है। इससे तुम्हारा मनोरथ अति शीघ्र पूर्ण हो जायेगा। रावण और बाणासुर केवल उनकी स्तुतिके द्वारा उन्हें प्रसन्न करके अतुल ऐश्वर्यके मालिक बन गये थे।"

शिवजीसे वर पानेके लिये वह केदारक्षेत्रमें जाकर अग्निको ही शिवजीका मुख मानकर अपने शरीरका मांस काट-काट करके उसमें हवन करने लगा। इस प्रकार छः दिन तक भी जब शिवजी प्रकट नहीं हुए, तो उसने अपना शीश काटकर अग्निमें डालनेके लिये तलवार उठाई, तभी परम दयालु भगवान् शिवने उस अग्निसे प्रकट होकर उसके

हाथ पकड़ लिये। शिवजीके स्पर्शसे ही वृकासुरके अङ्ग पूर्ववत् पूर्ण हो गये।

भगवान् शिवने कहा- "मैं तो केवल जल चढ़ानेसे ही प्रसन्न हो जाता हूँ, तो तुम अपने शरीरको इतना कष्ट क्यों दे रहे हो? तुम अपना मुँहमाँगा वर ले लो।"

वृकासुर शिवजीके साथ पार्वतीजीको देखकर उनके सौन्दर्यसे मुग्ध हो गया और उसके मुँहमें पानी भर आया। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि वह कैसे पार्वतीजीको प्राप्त करे? बहुत सोच-विचार करके उसने समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला यह वर माँगा कि वह जिसके भी सिरपर हाथ रखे, तो उसका सिर तुरन्त फट जाय और वह मर जाय। भगवान् शिव यह सुनकर कुछ गम्भीर हो गये और फिर हँसकर कहा- "ऐसा ही हो।"

वर पाकर वृकासुरने सोचा कि क्यों न इस वरका शिवजीके ऊपर प्रयोग करके मैं पार्वतीको हर लूँ? ऐसा विचार करके वह तुरन्त शिवजीके सिरके ऊपर ही वरकी परीक्षा करनेके लिये दौड़ा।

शिवजीने भयभीत होकर पूछा- "तुम यह क्या कर रहे हो?"

उसने कहा- "मैं आपके वरको परखना चाहता हूँ।" उसने यह नहीं कहा कि 'मैं पार्वतीको भोग करना चाहता हूँ।'

शिवजी अपने प्राण बचानेके लिये सिरपर पैर रखकर भागे। डरे हुए शिवजी आगे-आगे भाग रहे थे और वृकासुर उनका पीछा कर रहा था। भगवान् शिवने व्याघ्रछाला पहन रखी थी, भागते हुए वह भी गिर पड़ी, फिर उनका डमरु भी गिर गया। वे भागते-भागते अपने प्रभुको स्मरण कर रहे थे- "हे प्रभो! बिना सोचे-विचारे मैंने वर तो दे दिया। अब तो प्राणोंके लाले पड़ गये हैं, अब आप ही इस सङ्कटसे उबारो।" वे किसका स्मरण कर रहे थे? वे श्रीकृष्ण थे। यही ऐश्वर्यगत विचार है।

भगवान् शिवने पृथ्वीसे आकाश तक उड़ान भरी और फिर आकाशसे दूसरे ग्रहों तक। वे ब्रह्माण्डके एक छोरसे दूसरे छोर तक पहुँच गये, परन्तु वृकासुर वहाँ भी उनका पीछा करता हुआ पहुँच गया। ऊँचे लोकोंके प्रभावशाली देवता ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र भी शिवजीको इस भयङ्कर सङ्कटसे बचानेमें सक्षम न थे। अन्तमें वे भगवान् श्रीकृष्णके अंश भगवान् विष्णुके पास वैकुण्ठमें जा पहुँचे।

अपने भक्तको संकटमें देखकर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु एक ब्रह्मचारीके रूपमें प्रकट हो गये। उनके शरीरसे निकलता हुआ अद्‌भुत तेज शिवजी और वृकासुर दोनोंको आकर्षित कर रहा था। भगवान् विष्णुने वृकासुरको देखकर उसे विनम्रतासे कहा- "हे शकुनिनन्दन वृकासुर! आप बहुत थके-थके लग रहे हैं। लगता है कि आप बहुत दूरसे आ रहे हैं। तनिक विश्राम कर लीजिये। यह शरीर ही तो सारे सुखका आधार है। इसे अधिक कष्ट मत दीजिये। इस शरीरको अधिक कष्ट देनेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा। आप किस कारणसे इतना परिश्रम कर रहे हैं? यदि मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ, तो मुझे बेखटक कह सकते हैं। इस संसारमें लोग सहायकों द्वारा ही बहुतसे कठिन कार्योंको भी सिद्ध कर लेते हैं।"

भगवान् विष्णुके प्रत्येक शब्दसे अमृत बरस रहा था। वृकासुरने कुछ विश्राम करके कहा- "शिवजीने मुझे वरदान दिया है कि जैसे ही मैं किसीके सिरपर हाथ रखूँगा, तो वह सिर फट जायेगा और वह व्यक्ति मर जायेगा। अब मैं इस वरकी परीक्षा उन्हींपर करना चाहता हूँ।"

भगवान् विष्णुने कहा- "आप इतने बुद्धिमान् होकर भी ऐसी बातोंपर विश्वास कर लेते हैं। शिव! वह तो स्वयं गांजा पीता है, सब प्रकारकी नशीली वस्तुओंका सेवन करता है और शमशानमें रहता है। जितने भूत-पिशाच हैं, उसके अनुचर हैं, तो भला उसकी बातमें कभी कोई दम हो सकता है क्या? दक्ष प्रजापतिके शापसे तो वह पिशाचभावको प्राप्त हो गया है। क्या आप विश्वास करते हैं कि वह इतना शक्तिशाली है, जो यह वरदान दे सके? उसके वरदान झूठे प्रमाणित होंगे। वह आपको छल रहा है और मूर्ख बना रहा है। आप उसके पीछे व्यर्थ ही दौड़ रहे हो और अपने शरीरको कष्ट दे रहे हो, परन्तु अन्तमें देखोगे कि इसके वरदानका कोई भी प्रभाव नहीं होता है। इसे अपने ऊपर प्रयोग करके देखोगे कि कुछ भी नहीं होगा।" भगवान्‌की मायासे मुग्ध होकर वृकासुरने सोचा कि ये ठीक ही कह रहे हैं और वह बोला- "हाँ, हाँ, मैं यही करूँगा, मैं यही करूँगा।"

इस प्रकार भगवान् विष्णुके मीठे वचनों और मायावी शक्तिके प्रभावसे वह असुर छलावेमें आ गया। वह भगवान् शिवकी शक्ति और वरदानको भूल गया। बिना सोचे समझे उसने अपना हाथ तुरन्त ही

अपने सिरपर रख दिया जिससे उसका सिर फट गया और वह राक्षस मर गया।

यह घटना इस बातका प्रमाण है कि भगवान् शिव स्वतन्त्र नहीं हैं, उनके इष्ट भगवान् श्रीकृष्ण हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णु जो कि सभी मायिक गुणोंसे परे हैं, उनके द्वारा भगवान् शिवकी रक्षा हुई और उन्हें जीवनदान मिला। यदि कोई मनुष्य इस कथाको श्रद्धासे कहता अथवा सुनता है, तो वह संसारके बन्धनों और अपने शत्रुओंके भयसे मुक्त हो जाता है।

## बाणसुरकी रक्षा

राजा बलिके सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा बाणासुर था। उसकी एक हजार भुजाएँ थीं और वह बहुत बलशाली था। वह शिवजीका अनन्य भक्त था। अपने पिताके समान वह भी बहुत उदार और बुद्धिमान् था। शिवजीकी कृपासे इन्द्रादि देवता भी उसकी सेवा करते थे। एक दिन जब भगवान् शिव ताण्डव नृत्य कर रहे थे, तब उसने अपनी हजार भुजाओंसे अनेकों प्रकारके वाद्ययन्त्र बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया। भगवान् शिवने उसे मुहमाँगा वर माँगने को कहा, तो बाणासुरने कहा- "भगवन्! आप मेरे नगरकी रक्षा करते हुए सदा- सर्वदा यहीं निवास करें।"

बाणासुरको अपने बल और भाग्यपर घमण्ड हो गया। उसने जगत्के सभी वीरोंको युद्धके लिये ललकारा, परन्तु उसके पराक्रमको देखकर सभी भयसे पलायन कर गये। तब वह भगवान् शिवके पास आया और बोला- "मेरी भुजाएँ मेरे समान पराक्रमी योद्धासे युद्ध करनेके लिये मचल रही हैं, परन्तु मुझे अपने समान कोई योद्धा नहीं मिला है।" भगवान् शिवने कहा- "हे मूर्ख! जिस दिन तेरी ध्वजा टूटकर गिर जायेगी, उस समय मेरे ही समान योद्धासे तुम्हारा युद्ध होगा और वह तुम्हारा अभिमान चूर-चूर कर देगा।" बाणासुरकी बुद्धि इतनी दूषित हो गयी थी कि वह यह सुनकर भी मदमत्तताके कारण अति प्रसन्न हो गया।

ऊषा नामकी बाणासुरकी एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी, जिसका अभी विवाह नहीं हुआ था। एक दिन ऊषाने स्वप्नमें देखा कि साक्षात्

कामदेव जैसे सुन्दर युवकके साथ उसका मिलन हो रहा है। स्वप्न भङ्ग होते ही उसे अपने पास न पाकर विरहमें बिलख-बिलखकर रोती हुई विलाप करने लगी- "हे प्राणप्रियतम! तुम कहाँ हो?" उसकी ऐसी दशा देखकर उसकी सखी चित्रलेखाने कहा- "हे राजकुमारी! अभी तक किसीने तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं किया है, तो तुम किसे ढूँढ रही हो? क्यों कुररी जैसा विलाप कर रही हो?"

ऊषाने कहा- "सखि! मैंने स्वप्नमें एक बहुत ही सुन्दर नवयुवकको देखा है। वह साँवले रङ्गका है, उसके नेत्र कमलदलके समान हैं, उसकी भुजाएँ लम्बी हैं, पीताम्बर धारण किये हुए था और उसका रूप सभी स्त्रियोंको मुग्ध करने वाला है। मैं अभी उसके अधरामृतका पान करके तृप्त न हो पायी थी कि वह मुझे छोड़कर चला गया।" चित्रलेखाने कहा- "सखि! शोक मत करो। मैं अभी चित्र बनाती हूँ। तुम उसे पहचानकर मुझे बता दो। वह त्रिलोकमें कहीं भी होगा, तो मैं अपनी योगशक्तिसे उसे यहाँ ले आऊँगी।"

यह कहकर चित्रलेखाने अनेक देवताओं, गन्धर्वों, मनुष्यों आदिके चित्र बनाये। मनुष्योंमें महाराज वसुदेव, बलराम, और भगवान् श्रीकृष्णके चित्र भी बनाये। भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न जो स्वयं साक्षात् कामदेव हैं, उनका चित्र देखते ही ऊषा लज्जित हो गयी और जब उसने प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धका चित्र देखा, तो उसका सिर लज्जासे झुक गया और मन्द-मन्द मुस्कानसे कहा- "मेरा प्राणवल्लभ यही है।"

चित्रलेखा योगबलसे द्वारकामें सोये हुए अनिरुद्धको पलङ्गके साथ उठाकर अपने महलमें ले आयी और अपनी सखी ऊषाको उसके प्राणप्रियतमके दर्शन करा दिये। अनिरुद्ध भी ऊषाको देखकर उसके प्रति आकर्षित हो गये और वे ऊषाके महलमें ही रहने लगे। वह अन्तःपुर इतना सुरक्षित था कि कोई भी पुरुष उस ओर झाँक भी नहीं सकता था। ऊषाने अपनी सेवासे अनिरुद्धके हृदयपर अधिकार कर लिया और अनिरुद्ध यह भूल गये कि वे कितने दिनसे वहाँ वासकर रहे हैं।

द्वारपालोंने ऊषाके प्रसन्न मुख और देहमें ऐसे चिह्नोंको देखा जिससे पता चलता था कि किसी पुरुषके साथ उसका समागम हो रहा है। यह देखकर उन्होंने तुरन्त बाणासुरको इस विषयमें सूचित किया। उन्होंने

कहा- "हम दिन-रात निरन्तर महलपर पहरा देते हैं और कभी किसी पुरुषको भीतर जाने नहीं दिया है। यह समझ नहीं आ रहा है कि ऐसा कैसे हो गया है?"

यह सुनकर कि उसकी पुत्रीका चरित्र दूषित हो गया है, बाणासुरके हृदयमें अगाध पीड़ा हुई और वह उस पीड़ाको सहन नहीं कर सका। वह ऊषाके महलमें अचानक जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि उसकी प्यारी बेटी ऊषा सोलह श्रृंगार किये हुए अनिरुद्धके साथ पासा खेल रही है। बाणासुर अनिरुद्धको देखकर आग बबूला हो गया। अनिरुद्धने जब देखा कि बाणासुर अपने सैनिकोंके साथ वहाँ आया है और उनपर आक्रमणके लिये तैयार है, तो उन्होंने अपने बचावके लिये लोहेका एक अर्गल उठाकर सैनिकोंको मारना आरम्भ किया और वे घायल होकर सिरपर पैर रखकर वहाँसे भागने लगे। तब महाबली बाणासुरने अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया। अपने प्रियतमको बँधा हुआ देख ऊषा विलाप करने लगी और उसके नेत्रोंसे आँसू टपकने लगे।

अनिरुद्धको गये चार माह बीत गये थे, परन्तु उनका कहीं भी पता नहीं चला, उनके परिवारजन शोकाकुल हो गये। तभी नारदजीने आकर समाचार दिया कि अनिरुद्धको बाणासुरने बन्दी बनाकर रखा है। यह सुनकर श्रीकृष्ण, बलरामजीने अपनी सेनाको युद्धके लिये तैयार किया और बाणासुरकी नगरीको चारों ओरसे घेराबन्दी कर ली।

शिवजी अपने वाहन वृषभराज नन्दीपर सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय एवं गणोंके साथ रणभूमिमें उपस्थित हुए। अपने प्रभुकी आराधना छोड़कर अपने भक्त बाणासुरका पक्ष लेकर उनसे लड़ने लगे। भगवान् श्रीकृष्णसे शिवजीका, प्रद्युम्नसे कार्तिकेयका, बलरामजीसे बाणासुरके सेनापति कुम्भाण्ड और कूपकर्णका युद्ध हुआ। बाणासुरका पुत्र साम्बसे और स्वयं बाणासुर सात्यकिसे भिड़ गया। युद्धका दर्शन करनेके लिये आकाशमें देवताओंकी भीड़ लग गयी और इतना घमासान युद्ध हुआ कि देखने वालोंके रोंगटे खड़े हो गये।

शिवजीने अनेक अस्त्रोंका प्रयोग किया, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने सभीको निरस्त कर दिया और भगवान् श्रीकृष्णके सामने उनकी एक भी न चली। तब भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भास्त्रका (जिससे जॅम्भाई आने लगती

है) छोड़ा और शिवजीको निरन्तर जॅम्भाई आने लगी। तब शिवजी और लड़ाई न कर सके और बाध्य होकर वे युद्धसे विरत हो गये। तब भगवान् श्रीकृष्ण बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे और बलरामजीने बाणासुरके सेनापतियोंको बुरी तरहसे परास्त कर दिया। शिवजीके न होनेसे बाणासुरकी सेना तितर-बितर हो गयी।

तब और कोई उपाय न देखकर बाणासुर भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने स्वयं आया और हजार भुजाओंसे हजार बाण एक साथ छोड़े परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने एक साथ सभी बाणोंको काट दिया, उसके सारथी और घोड़ोंको घायल कर दिया। बाणासुरकी पराजय होते देख शिवजीने अपने भक्तके बचावके लिये शिव-ज्वर छोड़ा, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने नारायण-ज्वर छोड़कर उसे निष्क्रिय कर दिया। अब भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुरपर बाणोंकी झड़ी लगा दी और अपने सुदर्शन चक्रसे उसकी भुजाओंको काटने लगे। अपने भक्तपर भयङ्कर विपत्ति देखकर शिवजी समझ गये कि वे उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, तो वे बाध्य होकर भगवान् श्रीकृष्णके शरणापन्न हुये। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की और उन्हें प्रसन्न करके अपने भक्तके जीवनकी रक्षाकी प्रार्थना की।

भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने शिवजीसे कहा- "मैंने प्रह्लादको वर दिया था कि मैं उसके वंशमें किसी भी दैत्यका वध नहीं करूँगा और यह उसका प्रपोत्र है तथा मेरे प्रिय भक्त बलिका पुत्र है। आपने पहले इसके सम्बन्धमें जैसा निर्णय किया था, आपकी बात झूठी न हो जाय और आपके वचनको रखनेके लिये ही मैंने उसका अनुमोदनकर इसकी भुजाएँ काटकर इसके गर्वको चूर-चूर कर दिया है। इसकी बहुत बड़ी सेना पृथ्वीपर भार थी, इसीलिये मैंने उसका संहार करके पृथ्वीका भार थोड़ा हल्का कर दिया है। इसकी चार भुजाएँ शेष बची हैं, ये अजर-अमर बनी रहेंगी और यह आपके पार्षदोंमें मुख्य होगा। अब इसे किसी प्रकारका भय नहीं है।"

भगवान् श्रीकृष्णसे अभयदान पाकर बाणासुरने उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया और सहर्ष बहुतसे यौतुक (दहेज) के साथ अपनी लाडली बेटी ऊषाको अनिरुद्धके साथ द्वारकाके लिये विदा किया।

श्रीशुकदेव गोस्वामीने राजा परिक्षितको बताया कि भगवान् श्रीकृष्ण और शिवजीका युद्ध-वर्णन साधारण युद्धकी भाँति अमाङ्गलिक नहीं है। अपितु यदि कोई मनुष्य प्रातः उठकर भगवान् श्रीकृष्ण और शिवजीके युद्धकी घटनाका स्मरण करता है और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयको स्मरण करके प्रसन्न होता है, तो वह अपने जीवनकालमें कभी भी किसीके द्वारा पराजित नहीं होगा।

## काशी दहन

श्रीमद्भागवत एवं स्कन्दपुराणके अनुसार जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामें रहते थे, तो वे कभी-कभी अपना चतुर्भुज वासुदेव रूप प्रकट करते थे। वास्तवमें वे वहाँ उसी रूपमें प्रसिद्ध थे। उस समय करूष देशका पौण्ड्रक नामका एक राजा था। चापलूस लोग उसे बहकाया करते थे कि आप ही वास्तविक वासुदेव हैं और आपने जगत्के उद्धारके लिये अवतार लिया है, आप ही तो इस जगत्के मालिक हैं। यह बातें अनेकों बार सुनकर वह फूला नहीं समाता और स्वयंको भगवान् वासुदेव समझने लगा। उसने अपने शरीरमें दो नकली हाथ लगा लिये और ढिंढोरा पिटवाकर घोषणा कर दी कि- "द्वारकाके कृष्ण चार हाथोंवाले वासुदेव नहीं हैं, मैं ही असली वासुदेव हूँ।" उसने श्रीकृष्णके पास एक दूत द्वारा सन्देश भेजा कि- "तुम स्वयंको वासुदेव कहना छोड़ दो, वास्तवमें तो वासुदेव मैं ही हूँ। तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्न धारण किये हैं, अगर अपना भला चाहते हो, तो उन्हें छोड़कर मेरी शरणमें आ जाओ अन्यथा मुझसे युद्ध करो।" भगवान् श्रीकृष्ण और उनके परिवारजन इस बातको सुनकर बहुत देर तक हँसते रहे, तब श्रीकृष्णने उस दूतसे कहा- "तुम अपने राजासे कह देना कि हे मूर्ख! मैं चक्र आदि चिह्न ऐसे ही नहीं छोडूँगा। मैं इन्हें तुम और तुम्हारे साथियोंपर ही छोडूँगा।" दूतको सन्देश देकर भेजनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने रथपर सवार होकर काशीपर आक्रमण कर दिया क्योंकि उन दिनों पौण्ड्रक अपने मित्र काशीनरेशके महलमें ही ठहरा हुआ था।

पौण्ड्रक दो अक्षहौणी सेना लेकर श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये आ गया। उसने ठीक भगवान् श्रीकृष्ण जैसा वेश बना रखा था। उसने बनावटी शङ्ख, चमचमाता चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष और दिखावटी श्रीवत्सचिह्न आदि धारणकर रखे थे तथा उसके वक्षस्थलपर जगमगाती बनावटी कौस्तुभ मणि और वनमाला लटक रही थी। साधारण लोगोंको बहकानेके लिये नकली सोना भी असली सोनेसे अधिक चमकता है। उसके शरीरपर सुनहले रेशमी वस्त्र फहरा रहे थे और रथकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न भी लगा रखा था। उसका सारा परिवेश ही कृत्रिम था और ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कोई नट रङ्गमंचपर अभिनय करनेके लिये आया हो। उसका साथ देनेके लिये काशीनरेश भी तीन अक्षहौणी सेना लेकर युद्धभूमिमें लड़नेके लिये आ गया। उसने शिवजीसे वरदान प्राप्त कर रखा था कि वह युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णको पराजित कर सकेगा, परन्तु वह इस युद्धमें न केवल पराजित ही हुआ बल्कि मारा भी गया। भगवान् श्रीकृष्णने अपने बाणों और सुदर्शन चक्रसे विपक्षकी सारी सेनाका विनाशकर दिया। पौण्ड्रकको ललकारते हुए अपने बाणोंसे उसके रथको ध्वंसकर दिया, फिर सुदर्शन चक्रसे उसका सिर धड़से अलग कर दिया। भगवान् श्रीकृष्णने बाणोंसे काशीनरेशका सिर काटकर काशी नगरीमें फेंक दिया।

काशीनरेशका सुदक्षिण नामका एक पुत्र था, उसने अपने पितृघातीको मारकर प्रतिशोध लेनेकी ठान ली। सुदक्षिणने काशीके स्वामी विश्वनाथ शिवजीकी आराधना की। शिवजीको आराधनासे प्रसन्न करके सुदक्षिणने अपने पितृघातीके वधका उपाय पूछा। शिवजीने बतलाया- "तुम दक्षिणाग्निकी अभिचार विधिसे आराधना करो।" भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर सुदक्षिणने यथारूप अभिचार विधिसे यज्ञका अनुष्ठान किया और यज्ञ पूर्ण होते ही यज्ञकुण्डसे अति भीषण डरावना अग्निपुञ्ज मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ। उसका शरीर बिल्कुल नंग-धड़ंग था। तपे हुए तांबेके समान लाल-लाल दाड़ी-मूँछ और ताड़के पेड़के समान उसकी बड़ी-बड़ी टाँगें थीं। वह अपने हाथमें चमचमाता त्रिशूल लेकर इतनी तेजीसे घुमा रहा था मानो उससे निकलती आगकी लपटें असमयमें ही पृथ्वीपर प्रलय ला देंगी। वह अपने वेगसे पृथ्वीको कँपाता हुआ द्वारकाकी ओर दौड़ा। उसे देखकर द्वारकावासियोंने भयभीत होकर भगवान् श्रीकृष्णसे रक्षाकी प्रार्थना की।

भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कहा- "डरो मत, डरो मत।" और सुदर्शन चक्रको अग्निपुञ्जको कुचलनेकी आज्ञा दी। सुदर्शन चक्रने कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजवान् होकर उस अभिचार अग्निको निस्तेज कर दिया। अपनी पराजयसे निराश होकर वह कृत्या काशी लौट आयी और यज्ञके नियमोंके अनुसार उसने आचार्यके साथ यजमान सुदक्षिणको भी जलाकर भस्म कर दिया। सुदर्शन चक्रने भी उसका पीछा करते हुए काशी पहुँचकर काशी नगरीको जलाकर राखकर दिया।

उस समय प्राण बचानेके लिये भगवान् शिवको भी सिरपर पैर रखकर वह नगर छोड़कर वहाँसे भागना पड़ा। उन्हें इस बातका भी ज्ञान नहीं रहा कि उनकी व्याघ्रछाला कहाँ गिर गयी। उन्होंने वहींपर अपना त्रिशूल और अन्य सामान, यहाँ तक पार्वतीजीको भी वहीं छोड़ा और तुरन्त आकाशमें उड़ गये। फिर श्रीमन्महाप्रभुकी शरण लेनेके लिये भागते-भागते श्रीधाम नवद्वीपके हरिहर क्षेत्रमें आकर श्वास ली। तत्पश्चात् नवद्वीपसे श्रीजगन्नाथपुरीके निकट उड़ीसामें एकाम्रा-कानन (अब भुवनेश्वर)में पहुँचे जहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली, जो वहाँ भगवान् अनन्त वासुदेवके रूपमें विराजमान हैं।

यह लीला ऐश्वर्यगत विचारके अन्तर्गत है और यह भी यही दर्शाता है कि शिवजीके आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण या श्रीचैतन्य महाप्रभु ही हैं।

# अध्याय ३
# (कामदेवपर विजय)

## सतीजीका शिवजीके कथनपर सन्देह

त्रेता युगकी बात है जब भगवान् श्रीराम इस धराधामपर नरलीला कर रहे थे। श्रीरामके वनवासकालमें सीताजीका अपहरण हो गया था और उनके विरहमें श्रीरामचन्द्रजी बिलख-बिलखकर रो रहे थे। लक्ष्मणजी उनको सात्वना दे रहे थे और वे भी रो रहे थे। लक्ष्मणजी उन्हें जितनी सांत्वना देनेका प्रयास करते, श्रीरामचन्द्रजी उतनी ही अधीरतासे विलाप करते। वे व्याकुल होकर वृक्षों, लताओं, पशु-पक्षियों और गोदावरीसे पूछ रहे थे- "हे पञ्चवटी! क्या तुमने मेरी प्यारी सीताको देखा है? वह कहाँ गयी है? हे हिरण! क्या तुमने सीताको देखा है? हे गोदावरी! क्या तुमने मेरी प्रिया सीताको देखा है? वह मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी है?"

शङ्करजी सतीजीके साथ उस लीलाका दूरसे दर्शन कर रहे थे। उस लीलाको देखकर शङ्करजी मुग्ध हो गये, उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने सोचा- "अहो! यह लीला इतनी माधुर्यपूर्ण है कि किसी भी दर्शन करने वालेके हृदयको द्रवित कर सकती है।" परन्तु श्रीरामकी इस लीलामें हमें बाधा नहीं देनी चाहिये। वे उन्हें न देखें, इसीलिये उन्होंने दूरसे ही प्रणाम किया और परिक्रमा करके वे चलने लगे। तब सतीजीने पूछा- "हे नाथ! आप किसे प्रणाम कर रहे हैं?" तो शङ्करजी मुस्करा दिये, वे उनके मनकी बातको जान गये। सतीजीने पुनः पूछा- "आप बताते क्यों नहीं हैं किसे प्रणाम कर रहे हैं?"

शङ्करजी बोले- "मैंने अपने आराध्यदेव सर्वान्तर्यामी, विश्व- ब्रह्माण्डकी सृष्टि करने वाले भगवान् श्रीरामको प्रणाम किया है।" सतीजीको उनकी बातपर विश्वास नहीं हुआ और पूछा- "क्या ये वही हैं जो अपनी स्त्रीके लिये बिलख-बिलखकर रो रहे हैं? ये ऐसे कामी पुरुष हैं और इनको यह पता नहीं है कि इनकी पत्नी कहाँ है? मैं तो जानती हूँ कि वह

लङ्कामें है। अगर ये परब्रह्म हैं, तो क्या अपनी पत्नी सीताकी रक्षा नहीं कर सकते हैं? अगर ये सर्वशक्तिमान् हैं, तो रावण इनकी पत्नीको चुराकर कैसे ले गया? और क्या परब्रह्मकी कोई पत्नी होती है?" सतीजीको शङ्करजीकी बातमें सन्देह हो गया। भगवान्‌की कथा, शास्त्र और गुरुकी बातपर कभी भी सन्देह नहीं करना चाहिये नहीं तो विनाश हो जायेगा, 'संशयात्मा विनश्यति'। विनाशका यहाँ अर्थ है परमार्थसे च्युत हो जाना। शङ्करजीने देखा कि स्थिति गम्भीर हो गयी है, इन्हें वास्तवमें सन्देह हो गया है, तो वे गम्भीर होकर बोले- "यदि मेरे वचनपर विश्वास नहीं है, तो तुम स्वयं ही परीक्षा कर लो।" यह कहकर वे कुछ अनमनेसे होकर कुछ दूर एक वट वृक्षकी छाँवमें बैठ गये और भगवान्‌की मधुर लीलाओंका स्मरण करने लगे- "अहो! कैसे भगवान् साधारण मनुष्य जैसी लीलाएँ कर रहे हैं, साधारण व्यक्ति तो इन्हें समझ ही नहीं सकेगा।"

इधर सतीदेवीने विचार किया कि मैं क्या परीक्षा लूँ? उन्होंने सोचा कि यह बड़ा कामी हो रहा है, इसीलिये मैं सीताजी जैसा वही रूप बनाऊँ जो उनका अपहरणके समय था। अपनी अलौकिक शक्तिसे ठीक वैसा ही रूप बनाकर वे इस आशामें श्रीरामचन्द्रजीके सामने जाकर खड़ी हो गयीं कि वे उन्हें सीता समझकर आलिङ्गन करेंगे, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें देखकर भी अनदेखा कर दिया। वे मुख दूसरी दिशामें घुमाकर वृक्ष-लताओंसे पूछने लगे- "मेरी प्यारी सीताको कहीं देखा?" इस प्रकार वे बावरे बन गये। नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग रही थी, लक्ष्मणजी उन्हें किसी प्रकारसे सम्भाले हुए थे। सतीजीने सोचा कि सम्भवतः इन्होंने मुझे देखा ही नहीं इसीलिये घूमकर पुनः उनके समक्ष खड़ी हो गयीं। श्रीरामचन्द्रजीने पुनः उन्हें अनदेखाकर मुड़ गये। सतीजी चारों ओर उनके सामने आतीं, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी बार-बार मुड़कर उनकी उपेक्षा कर देते। अन्तमें श्रीरामके हृदयमें सतीजीके प्रति कुछ दया आयी और उन्होंने सतीजीको प्रणामकर कहा-"देवि! आप इस वनमें अकेली क्या कर रही हैं? शङ्करजी तो पहले ही इधरसे चले गये।"

यह सुनकर सतीजी भौंचक्की रह गयीं और सोचने लगीं कि इन्होंने मुझे कैसे पहचान लिया? मैं तो इन्हें साधारण मनुष्य समझ रही थी, परन्तु लगता है कि मेरे स्वामीकी बात परम सत्य है और ये परब्रह्म

हैं। सतीजीने तुरन्त झुककर उन्हें प्रणाम किया और जैसे ही प्रणाम करके उठी, तो देखती हैं कि दृश्य ही बदल गया है। सामने श्रीरामचन्द्रजीके साथ उनकी बायीं ओर अति प्रसन्न मुद्रामें सीताजी खड़ी हैं। जिधर भी दृष्टि जाती, वे उधर ही श्रीसीता-रामको ही देखतीं। वृक्ष-लताओं-पत्तोंमें जिधर भी देखा, सर्वत्र अति प्रसन्न मुद्रामें श्रीसीता-रामको ही देखा और वह रूप भी वनवासका नहीं था अपितु दोनोंने सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण किये हुए थे। यह देखकर सतीजी आश्चर्यचकित हो गयीं। उनका मोह सम्पूर्ण रूपसे भङ्ग हो गया। वे थर-थर काँपती हुई जमीनपर गिर पड़ीं और उन्होंने श्रीसीता-रामको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उन्होंने उठकर देखा कि पुनः पहले सा ही दृश्य है, अब सीताजी कहीं नहीं हैं और श्रीरामचन्द्रजी 'हा-सीते! हा सीते!' कहकर विलाप कर रहे हैं।

सतीजी मुड़कर चलने लगीं और विषादग्रस्त हो गयीं कि अब मैं अपने पति, अपने गुरुको क्या कहूँगी? मुझे उनकी बातपर अविश्वास हुआ यह तो ठीक नहीं है। जब वे शङ्करजीके पास पहुँची, तो उन्होंने पूछा-"आपने कुछ परीक्षा की? क्या आपका चित्त स्थिर हुआ?" सतीजी लज्जित होकर बोली- "हे नाथ! मैं उनकी क्या परीक्षा लेती? आप जो कुछ कहते हैं वह सत्य ही तो है।" एक तो गुरुकी बातमें सन्देह हुआ था और दूसरा गुरुसे अपने हृदयकी बातको छिपाया, झूठ बोला, तो यह महापराध हो गया।

एक सच्चा शिष्य सदा अपने अनुभूति सम्पन्न गुरुमें निष्ठा रखता है। वह जानता है कि गुरुजी भगवान्‌के प्रकाश हैं, साक्षात् भगवान्‌के ही समान हैं, वे सब कुछ जानते हैं। यदि चित्तकी दुर्बलतासे कुछ हो भी जाय, तो गुरुजीसे नहीं छुपाना चाहिये, यदि उनसे स्पष्ट कह देंगे, तो वे उसका निराकरण कर देंगे। शङ्करजी सतीके गुरु थे, परन्तु उन्होंने उनकी बातका विश्वास नहीं किया। यदि एक शिष्य अपने गुरुजीकी बातका विश्वास नहीं करता है, तो उसकी भक्ति और पारमार्थिक जीवन नष्ट हो जाता है। यदि शिष्य गुरुके सम्मुख असत्य वचन बोलता है, तो वह नरकगामी होता है।

शङ्करजीने देखा कि इसने पहले मेरे वचनका अविश्वास किया और अब झूठ बोल रही है। अगर मैं कुछ और कहूँगा, तो यह उस बातको

ढकनेके लिये झूठ बोलकर और अपराध करेगी। शङ्करजी कुछ नहीं बोले। उन्होंने यह देखनेके लिये ध्यान लगाया कि सतीजीने क्या परीक्षा ली? उन्होंने देखा कि इसने तो सीताजीका रूप बनाया और सीताजी मेरी आराध्या हैं। शङ्करजीने मन-ही-मन सङ्कल्प किया- "इस शरीरमें, इस रूपमें सती मेरी आराध्या सीताजीके समान हो गयी, मेरी माताके समान हो गयी। अब मैं इसे अपनी अर्धाङ्गनी और शिष्याके रूपमें ग्रहण नहीं कर सकता। जबतक मेरा जीवन या इसका जीवन रहेगा, तबतक इसके इस शरीरसे केवल मेरी आराध्याका सम्बन्ध छोड़कर दूसरा कोई भी नाता नहीं रहेगा, नहीं रहेगा।"

इतनेमें आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और देवताओंने कहा- "आपके समान ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करनेवाला संसारमें दूसरा कोई नहीं है। आप धन्य हैं, आप धन्य हैं।" सतीजी डर गयीं और उनसे पूछा- "आपने क्या प्रतिज्ञा की है?" शङ्करजी मौन हो गये, कुछ बोले ही नहीं। सतीजीके हृदयमें भीषण कष्ट हुआ।

जब वे वापिस कैलाश अपने घर लौटे, तो स्वयं शङ्करजीने सतीजीका आसन अपने हाथोंसे सामने बिछा दिया। वैदिक रीतिके अनुसार पत्नी पतिके बायीं ओर बैठती है और माता जो गुरुदेवके समान आदरणीय है, पुत्रके सामने मुख करके बैठती है। भगवान्को अपने बायीं ओर रखकर प्रणाम करना चाहिये कि वे हमें देखें और गुरु साक्षात् भगवान्के प्रकाश हैं और हमारे सामने प्रकट रूपमें हैं, इसीलिये उन्हें सामनेसे प्रणाम करना चाहिये।

सच्चा शिष्य कभी भी मौन नहीं रहता बल्कि आदरपूर्वक गुरुदेवसे प्रश्न पूछता है और उनकी सेवा करता है। वह चुनौतीकी अपेक्षा कुछ सीखनेके लिये प्रश्न करता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी श्रीकृष्ण कहते हैं-

**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।**
**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।** (गीता ४/३४)

अपने गुरुके निकट जाकर सत्यको जाननेका प्रयास करो। दीन होकर

प्रश्न पूछो और उनकी सेवा करो। तत्त्वज्ञानी गुरुने सत्यके दर्शन किये हैं, इसीलिये वे ही हमें सत्यका ज्ञान दे सकते हैं।

सतीको शङ्करजीकी विरह वेदना सताने लगी। सतीजी समझ गयीं– "शङ्करजीने मेरा त्याग कर दिया है, वे मुझसे माताके समान व्यवहार कर रहे हैं क्योंकि मैंने उनकी आराध्या सीताजीका रूप धारण किया था। मुझे अब इस देहसे क्या प्रयोजन जब शङ्करजी इसे ग्रहण नहीं करते हैं?"

इस प्रकार बहुत कष्टसे दिन बिताते हुए एक दिन सतीजीने आकाशमार्गसे अनेक देवताओंको पत्नियों सहित विमानोंमें जाते हुए देखा और वे सभी दक्ष प्रजापति द्वारा आयोजित यज्ञकी चर्चा कर रहे थे। सतीजीने शङ्करजीसे कहा– "मेरे पिता एक बहुत बड़े यज्ञका आयोजन कर रहे हैं, क्यों न हम भी वहाँ चलें? वहाँ मेरी बहनें भी आयेंगी और मुझे अपनी माता–बहनोंसे मिले बहुत समय हो गया है, उन लोगोंसे मिलनेके लिये मेरा मन भी मचल रहा है। पति, गुरु और माता–पिताके यहाँ तो बिना बुलाये ही जाया जा सकता है।" सतीजीकी यह बात सुनते ही शङ्करजीको तुरन्त दक्ष प्रजापतिके मर्मभेदी अपमान भरे शब्दोंका स्मरण हो आया।

बहुत समय पहलेकी बात है, प्रजापतियोंके यज्ञमें बड़े–बड़े ऋषि, देवता, मुनि आदि अपने अनुयायियोंके साथ इकट्ठे हुए थे। उस यज्ञमें सतीजीके पिता दक्ष प्रजापतिने जब प्रवेश किया, तो उनके तेजको देखकर ब्रह्मा और शङ्करजीको छोड़कर सभी सभासद् आसनसे उठकर खड़े हो गये और उनका स्वागत किया। दक्ष प्रजापतिने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और अपने आसनपर बैठने लगे, तो देखा कि महादेव पहलेसे ही अपने आसनपर बैठे हैं। यह देखकर दक्ष क्रोधसे तमतमा उठे और सभी सभासदोंसे कहने लगे– "यह निर्लज्ज महादेव समस्त लोकपालोंकी पवित्र कीर्तिको धूलमें मिला रहा है। इसने मेरी कन्याका पाणिग्रहण किया है, इसीलिये यह मेरे पुत्रके समान हो गया है। उचित तो यह होता कि यह उठकर सबसे पहले आकर मेरा स्वागत करता, परन्तु इसने वाणीसे भी मेरा सत्कार नहीं किया है। भूत–प्रेत–पिशाचोंके सङ्गमें रहकर यह साधारण शिष्टाचारको भी सम्पूर्ण रूपसे भूल गया है। मैंने केवल

ब्रह्माजीके बहकावेमें आकर बिना सोचे विचारे ही अपनी सुकुमारी कन्याका ऐसे भूत-प्रेतोंके सरदार, आचरणहीन और दुष्ट स्वभाववालेके साथ विवाह कर दिया।" क्रोधसे आग बबूला होकर दक्ष प्रजापतिने शङ्करजीको शाप दे दिया- "यह महादेव देवताओंमें अधम है, अतः इसे यज्ञका भाग कभी न मिले।"

दक्ष प्रजापतिके ऐसे अपमानजनक मर्मभेदी वाक्यको सुनकर भी शङ्करजी कुछ प्रतिवाद न कर मौन होकर बैठे रहे। नन्दीश्वरको दक्षका व्यवहार सहन नहीं हुआ और उसने दक्ष प्रजापति और ब्राह्मणोंको शाप दिया और ब्राह्मणोंकी ओरसे भृगु ऋषिने यह शाप देकर कहा- "जो लोग शिवभक्त और उन भक्तोंके अनुयायी हैं, वे सत्-शास्त्रोंके विरुद्ध आचरण करने वाले और पाखण्डी होंगे। जो लोग आचारविहीन, मन्दबुद्धि तथा जटा, राख और हड्डियोंको धारण करने वाले हैं- वे ही शैव सम्प्रदायमें दीक्षित होंगे।" भृगुऋषिके इस प्रकार शाप देनेपर शङ्करजी कुछ बोले नहीं और खिन्न मनसे अपने अनुयायियोंके साथ वहाँसे चल दिये। उधर दक्ष प्रजापतिके हृदयमें शङ्करजीके प्रति द्वेष दिन दोगुणा और रात चौगुणा बढ़ता गया। उसने यज्ञोंमें शङ्करजीको भाग देना बन्द कर दिया। ब्रह्माजीने दक्षको प्रजापतियोंका अधिपति बना दिया, तो उसका गर्व और भी बढ़ गया और वह फूले नहीं समाया।

शङ्करजीने सतीजीके अपने पिताके यज्ञमें जानेकी उत्कण्ठा देखकर कहा- "हे देवि! अपने बन्धुओंके यहाँ बिना बुलाये जानेकी बात आपने जो कही है, वह तभी तक करना उचित है जब तक उनका विरुद्ध भाव न हो। विद्या, तप, धन, सुन्दर-स्वस्थ देह, युवावस्था और उच्च कुल- ये सत्पुरुषोंमें गुण हैं, परन्तु नीच पुरुषोंमें ये ही अवगुण हो जाते हैं, क्योंकि इनसे उनका अभिमान बढ़ जाता है और उनकी विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है और वही उनको घोर सर्वनाशकी ओर ले जाता है। इसी कारणसे वे महापुरुषोंके प्रभावको देख नहीं पाते और उनके प्रति आसानीसे अपराध कर बैठते हैं। इसीलिये अस्थिर चित्त वाले 'बन्धुओं' के यहाँ बिना बुलाये कभी भी नहीं जाना चाहिये। मैं जानता हूँ कि तुम अपने पिताकी सर्वाधिक प्रिय पुत्री हो, परन्तु मेरी आश्रिता होनेसे तुम्हें वहाँ पिताजीसे किसी भी प्रकारका सम्मान नहीं मिलेगा। दक्ष यद्यपि तुम्हारे

पिता हैं, किन्तु मेरे साथ वैर भाव रखनेके कारण तुम्हें उनसे मिलने जानेका विचार कभी भी नहीं करना चाहिये।"

सतीजीके हृदयमें बड़ा द्वन्द होने लगा और वे निश्चय नहीं कर पा रहीं थी कि क्या करना चाहिये? एक ओर अपने बन्धुओंसे बहुत दिनोंके बाद मिलनेकी उत्कण्ठा और दूसरी ओर शङ्करजीकी अप्रसन्नता। शोक-क्रोधसे उनका चित्त क्षुब्ध हो गया, स्त्री स्वभावके कारण उनकी बुद्धि मूढ़ हो गयी। वे सत्पुरुषोंके प्रिय भगवान् शङ्करजीकी बातको न मानकर लम्बी-लम्बी साँसे लेती हुई अपने पिताके घरकी ओर चल दीं। उन्हें अकेली जाते देख शङ्करजीके सेवक नन्दीको साथ लेकर उनके पीछे चले। मार्गमें उन्होंने सतीजीको बैलपर सवार करा दिया और छत्र, चँवर आदि राजचिह्न तथा दुन्दुभि, शङ्ख और बाँसुरी आदि बजाते हुए सभी लोग उनके साथ चलने लगे।

तदनन्तर सतीजी सेवकोंके साथ दक्षकी यज्ञशालामें पहुँची। दक्ष द्वारा उनकी अवहेलना किये जानेसे केवल सतीजीकी माता और बहनोंको छोड़कर दक्षके भयसे किसीने भी सतीजीका सम्मान नहीं किया, मिलने तक नहीं आये। पिताके द्वारा अपमानित होनेके कारण उन्होंने माता और बहनोंके दिये हुए उपहारोंको स्वीकार नहीं किया। सतीजीका यज्ञमण्डपमें तो अपमान हुआ ही था और जब उन्होंने यह भी देखा कि यज्ञमें कहीं भी शङ्करजीको भाग नहीं दिया गया है, तो वे अत्यधिक क्रोधित हो गयीं।

क्रोधसे तमतमाते हुई सतीजीने अपने पितासे कहा- "भगवान् शङ्कर तो सभी देहधारियोंके प्रिय आत्मा हैं। उनका न तो कोई मित्र है, न ही शत्रु, इसीलिये उनका किसी भी प्राणीसे वैर नहीं है। संसारकी नश्वर धन-सम्पत्तिके मद्में चूर आप जैसे व्यक्ति ही उनसे द्वेष कर सकते हैं, जिनके चरणोंसे गिरे निर्माल्यको ब्रह्मा आदि देवता शीशपर धारण करके अपनेको धन्य मानते हैं। यदि निरङ्कुश लोग धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेवाले अपने स्वामीकी निन्दा करें, तो दण्ड देनेकी शक्ति न होनेपर सेवकको कान बन्द करके वहाँसे चला जाना चाहिये और यदि शक्ति हो, तो निन्दककी जिह्वा काट लेनी चाहिये। इस पापको रोकनेके लिये सेवकको अपने प्राण स्वयं दे देने चाहिये, यही धर्म है। आप भगवान् नीलकण्ठसे द्वेष करते हैं, इसीलिये आपसे उत्पन्न इस शरीरको अब मैं और रख नहीं

सकती हूँ।" यह कहकर सतीजी वहाँ भूमिपर बैठ गयीं और आँखें मूँदकर भगवान् शङ्करका ध्यान करती हुई अपने योगबलसे अपनी देहसे अग्निको प्रकट करके अपनी देहको जलाकर भस्म कर दिया।

इस प्रकार शरीर त्यागनेसे सतीजीका अपने शिव-विरोधी अभिमानी पितासे सम्बन्ध सदाके लिये टूट गया और उन्होंने अपने अपराधका प्रायश्चित किया। उन्होंने अपने पतिसे पुनः मिलनेके लिये उपाय ढूंढकर हिमालयकी पुत्री पार्वतीके रूपमें जन्म ग्रहणकर दूसरा पवित्र शरीर धारण किया। इस जीवनमें उन्होंने शङ्करजीको पतिके रूपमें पानेके लिये कई वर्ष कठोर तपस्या की।

## कामदेवका भस्म होना

सतीजीके देहत्यागके उपरान्त शङ्करजीको कुछ भी नहीं भाता था। इसलिये वे हजारों वर्ष तक समाधिमें चले गये। उसी समय एक बहुत बलशाली असुर तारकने चारों दिशाओंमें तहलका (उपद्रव) मचाते हुए सभी लोकोंको जीत लिया। सभी देवता सम्पदविहीन होकर तारकसे छुटकारा पानेका उपाय जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास गये। उनके कष्टोंको देखकर ब्रह्माजीका हृदय पिघल गया और कहा- "इस दैत्यकी मृत्यु केवलमात्र शिवजीसे उत्पन्न पुत्रके द्वारा ही होगी और दूसरा कोई इसे नहीं मार सकता। दक्षपुत्रीने अब हिमालयराजके घर जन्म ले लिया है और वह शिवको पुनः पतिके रूपमें पानेके लिये घोर तपस्या कर रही है। तुम लोग जगत् कल्याणके लिये कामदेवको शिवजीकी समाधि भङ्ग करनेके लिये भेजो। जब उनकी समाधि टूट जायेगी, तो हम सब-के-सब मिलकर उनका विवाह पार्वतीसे करा देंगे।"

कामदेवने मनमें विचार किया कि शङ्करजीकी समाधि भङ्ग करनेसे मेरा मरण निश्चित है, कोई भी देवता मुझे बचा नहीं सकते। परन्तु मैं क्या करूँ? सभीके कल्याणके लिये अपने जीवनको न्यौछावर करके भी मुझे यह कार्य करना ही चाहिये। तब कामदेवने अपने प्रभावका विस्तार करना आरम्भ कर दिया। जगत्में स्त्री-पुरुष संज्ञा वाले जितने भी चर-अचर प्राणी थे, सारे-के-सारे अपनी-अपनी मर्यादाको छोड़कर

काममें आसक्त हो गये। सर्वत्र ही वसन्तका सुन्दर मनोहर वातावरण हो गया, कामरूपी शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन बहने लगा। कामदेव अपनी सेनासहित अनेकों प्रकारकी कलाएँ करके भी हार गया, परन्तु शङ्करजी टससे मस नहीं हुए, ज्यों-के-त्यों समाधिमें ही बैठे रहे, उनकी समाधि टूटी नहीं। तब कामदेवने अन्य और कोई उपाय न देखकर अपने अमोघ(कभी भी व्यर्थ न होनेवाले) पञ्च पुष्पबाण शङ्करजीकी ओर छोड़े, जो उनके हृदयमें लगे। शङ्करजीकी समाधि अचानक टूट गयी और बेचैन होकर उन्होंने आँखे खोलकर सामने कामदेवको देखा। क्रोधित होकर शङ्करजीने अपना तीसरा नेत्र खोला और उनके देखते-ही-देखते कामदेव तुरन्त भस्म हो गया। सर्वत्र हाहाकार मच गया। कामदेवकी पत्नी रति रोती-बिलखती हुई शङ्करजीके पास आयी और जोर-जोरसे विलाप करने लगी। सामने अबलाको देखकर शङ्करजीको दया आ गयी और कहने लगे- "हे रति! तू दुःखी मत हो। अबसे तेरे पतिका नाम अनङ्ग होगा, वह बिना शरीरके ही सबको व्यापेगा। द्वापरमें जब भगवान् श्रीकृष्ण अवतार लेंगे, तब तुम्हारा पति उनके पुत्र प्रद्युम्नके रूपमें जन्म लेगा और उस समय तुम्हारा उससे मिलन होगा।"

तब ब्रह्मा और विष्णुके द्वारा बहुत समझानेपर शङ्करजीने पार्वतीसे विवाहकी सहमति प्रदान कर दी। इस प्रकार शङ्करजीने कामदेवको भी पराजित कर दिया।

सतीजी और शिवजी दोनोंने ही भगवान् श्रीरामकी नरवत्लीलामें सेवा की। वास्तवमें रावण असली सीताको चुराकर नहीं ले गया था, वह उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकता था। वह माया सीताको ही चुरा ले गया था। असली सीताजी जो भगवान् श्रीरामकी ह्लादनी शक्ति हैं, वे अग्निदेवकी सुरक्षामें थीं। श्रीरामका विलाप करते हुए पेड़-पौधों, नदी-नाले और पहाड़ोंसे पूछना कि 'मेरी सीता कहाँ है? मेरी सीता कहाँ है?' यह केवल भगवान्‌की नरवत् लीला ही है।

आगेकी घटना भी नरवत् विचार या माधुर्यगत विचारका ही उदाहरण है। यहाँ पर कुछ तत्त्वगत विचार भी है और यह मिला-जुला अमृतका पात्र है, जो कि माधुर्य (मिठास) और तत्त्व (दार्शनिकता)से भरा हुआ है और सुस्वादु भी है।

भगवान् शिव बहुत शक्तिशाली हैं और उनमें कोई कामुकता भी नहीं है। वे यदि नग्न भी हों और उनकी पत्नी पार्वती भी नग्न अवस्थामें उनकी गोदमें बैठी हों, तो भी उनमें कोई कामुकता या विकार नहीं होगा। यदि एक साधारण युवक और युवती नग्न अवस्थामें पास-पास बैठे हों, तो कामुकता उनमें प्रवेश कर जायेगी, दोनों ही पतित हो जायेंगे। जबकि शिवजी और पार्वतीजी कहीं भी, किसी भी स्थितिमें क्यों न हों, उनका पतन कभी भी नहीं हो सकता।

इस संदर्भमें एक गुप्त और महत्वपूर्ण घटना श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें वर्णित है। एक बार भगवान् शङ्करजी सन्तोंकी सभामें प्रवचन कर रहे थे और पार्वतीजी सोलह श्रृंगारकर उनकी गोदमें बैठी थीं और एक हाथसे शङ्करजीने उनका आलिङ्गन किया हुआ था।

उसी समय शङ्करजीके गुरु-भ्राता और उत्तम-भक्त चित्रकेतु भगवान् द्वारा प्रदत्त विमानपर सवार होकर भ्रमण करते-करते वहाँसे निकले। उन्होंने शङ्करजीको देखा और परिहासमें कहने लगे- "अहो देखो! ये सारे जगत्के धर्मशिक्षक और गुरु हैं। जटाधारी साधुओं, तपस्वियों और ब्रह्मवादियोंकी सभामें सभापति होकर भी एक साधारण कामुक पुरुषके समान निर्लज्जतासे अपनी स्त्रीको गोदमें लेकर बैठे हैं। प्रायः साधारण पुरुष भी एकान्तमें ही अपनी स्त्रियोंके साथ ऐसे बैठते हैं; सभीके सामने नहीं, परन्तु ये इतने बड़े व्रतधारी होकर भी उसे भरी सभामें गोदमें लेकर बैठे हैं।" अगाध बुद्धिवाले भगवान् शङ्कर यह कटाक्ष सुनकर केवल हँसने लगे, कुछ बोले नहीं। चित्रकेतुको अभिमान हो गया था कि 'मैं जितेन्द्रिय हूँ'।

पार्वतीजीसे उनकी यह धृष्टता सहन नहीं हुई और उन्होंने क्रोधसे कहा- "अहो! हम जैसे निर्लज्जोंपर शासन करने वाला प्रभु इस संसारमें यही है क्या? लगता है कि ब्रह्माजी, भृगु, नारद आदि बड़े-बड़े महापुरुष धर्मका रहस्य नहीं जानते हैं, इसीलिये वे धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करने वाले भगवान् शङ्करको इस कामसे नहीं रोकते हैं। ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं, ऐसे मङ्गलरूप साक्षात् जगद्गुरु भगवान् शङ्करका इस क्षत्रियने अपमान किया है, इसीलिये यह दण्डका भागी है। अतः हे दुर्मते! तुम पापमय असुर योनिमें जाओ। ऐसा

होनेसे तुम फिर किसी महापुरुषके प्रति जीवनमें कभी अपराध करनेकी धृष्टता नहीं करोगे।"

यह सुनकर चित्रकेतु विमानसे उतरकर हाथ जोड़कर बोले– "हे देवि पार्वतीजी! मैं आपका शाप स्वीकार करता हूँ। क्योंकि देवता लोग मनुष्योंके लिये जो कुछ कह देते हैं, वह उनके लिये प्रारब्धानुसार मिलने वाले कर्मफलकी पूर्व सूचना होती है। मैं शापसे मुक्त होनेके लिये आपके चरणोंमें प्रार्थना भी नहीं कर रहा हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि मेरी जो बात अनुचित लगी हो, उसके लिये मुझे क्षमा करें।" यह कहकर चित्रकेतु अपने विमानमें बैठकर चले गये।

तब भगवान् शङ्करने सभीके सामने पार्वतीजीसे कहा– "हे देवि! दिव्यलीला-विहारी भगवान् वासुदेवके निःस्पृह और उदारचित्त दासानुदासोंकी महिमा आपने अपनी आँखोंसे देख ली। जो लोग भगवान्के शरणागत होते हैं, वे किसीसे भी नहीं डरते। क्योंकि उन्हें स्वर्ग, मोक्ष और नरकोंमें भी भगवान्के समान भावसे दर्शन होते हैं। प्रिये! यह परम भाग्यवान् चित्रकेतु उन्हीं भगवान्का प्रिय अनुचर है, मैं भी भगवान् हरिका ही प्रिय हूँ। इसीलिये तुम्हें भगवान्के प्रिय भक्त, शान्त, समदर्शी महात्मा पुरुषोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका आश्चर्य नहीं करना चाहिये।"

यह सुनकर पार्वतीजीका चित्त शान्त हो गया। भगवान्के परमप्रेमी भक्त चित्रकेतु भी बदलेमें पार्वतीजीको शाप दे सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा न करके स्वयं शापको स्वीकार कर लिया। यही साधु पुरुषोंका लक्षण है। चित्रकेतुके साथ शङ्करजीका मित्रवत् सम्बन्ध है, क्योंकि दोनोंके गुरु मूल संकर्षण हैं, इसीलिये वे दोनों गुरु-भ्राता हैं। उनका कहनेका अभिप्राय यह नहीं था कि भगवान् शङ्करके हृदयमें कामुकता है अपितु प्रवचन करते समय लोकमर्यादाका विचार करना चाहिये। साधारण लोग श्रेष्ठ व्यक्तिका आचरण देखकर ही सीखते हैं। वे लोग शिवजीका आचरण देखकर शिवजीको समझ नहीं पायेंगे और उनका अनुकरण करके पतित हो जायेंगे। 'महाजनो येन गता सः पन्था'– महाजन जिस पथपर चलते हैं, वही पथ है। शिवजी बारह महाजनोंमेंसे एक हैं। अतः हम महाजनका ही अनुसरण कर रहे हैं, ऐसा कहकर साधारण लोग परम वैष्णव शिवजीके चरणोंमें अपराध कर बैठेंगे।

कामुकता भगवान् शङ्करके पास फटक भी नहीं सकती। भगवान् सदाशिव और न ही उनके आंशिक अवतार पार्वतीके साथ रहने वाले भगवान् शङ्करके मनमें कभी कामुकता आ सकती है। तब यह कैसे सम्भव हो गया कि भगवान् शङ्कर मोहिनी सुन्दरीकी ओर आकर्षित हो गये? मोहिनी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हैं और उनके लिये सब कुछ सम्भव है, कुछ भी असम्भव नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने ही स्वयं शङ्करजीके हृदयमें मोहिनीके प्रति आकर्षण पैदा किया था, क्योंकि उनकी अन्तरङ्गा शक्ति इतनी शक्तिशाली है कि वह किसीको भी मोहित करके कुछ भी करवा सकती है।

# अध्याय ४
# (पूर्ण प्रेमका दान)

महान सन्त तुलसीदासजीने अपने ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसमें लिखा है कि हमें शिव और पार्वतीको गुरुके रूपमें स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि वे ही हमें भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंमें प्रीति प्रदान कर सकते हैं। और जो भगवान् शिवकी स्वतन्त्र ईश्वरके रूपमें आराधना करते हैं, वे वृकासुरके समान हैं, क्योंकि वे भगवान्की शक्तिके द्वारा अपनी इन्द्रिय तुष्टि चाहते हैं।

शिवजी श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय हैं और प्रियत्वके कारण ही उनसे अभिन्न हैं। शिवजीका सदा आदर करनेका प्रयास करना चाहिये क्योंकि वे श्रीकृष्णके सर्वोत्तम भक्त हैं।

**निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा ।**
**वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥**

(श्रीमद्भागवत १२/१३/१६)

जिस प्रकार गङ्गाजी समस्त नदियोंमें श्रेष्ठ हैं, भगवान् अच्युत देवताओंमें सर्वोपरि हैं, भगवान् शिवजी वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और इसी प्रकार श्रीमद्भागवत भी सभी पुराणोंमें श्रेष्ठ है। हमें भक्त बनना चाहिये और भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिके लिये हमें शिव-पार्वतीको गुरु रूपमें समझना चाहिये, पृथक ईश्वरके रूपमें नहीं।

भगवान् शिव नित्य ही श्रीकृष्णके धाम वृन्दावनमें निवास करते हैं और वे वहाँ विभिन्न रूपोंमें सेवा करते हैं। केवल वहीं ही नहीं, जहाँ भी भगवद्धाम हैं जैसे श्रीधाम नवद्वीप, श्रीधाम जगन्नाथपुरी, श्रीधाम अयोध्या, सर्वत्र ही शिवजी सेवकके रूपमें सेवा कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे ही शिवजीका गोपीश्वर महादेवके रूपमें प्रकाश हुआ। जब श्रीकृष्णको रास करनेकी इच्छा हुई, तो उनकी ह्लादिनी शक्ति श्रीमती राधिका उनकी बायीं ओरसे और गोपीश्वर महादेव उनकी दायीं ओरसे

प्रकटित हुए। पृथ्वीपर स्थित काशी या कैलाशमें निवास करने वाले शिव वृन्दावनके सदाशिवके आंशिक प्रकाश हैं। जगत्के सभी लोग जिन-जिन रूपोंमें शिवजीकी पूजा करते हैं, वे सभी सदाशिवका प्रकाश मात्र हैं; वे वास्तविक शिव नहीं हैं। शिवजीके आंशिक प्रकाश जैसे कि भूतेश्वर महादेव, रङ्गेश्वर महादेव, पिपलेश्वर महादेव आदि वह सर्वोच्च वर देनेमें अक्षम हैं जो कि गोपीश्वर महादेवकी कृपासे सहज ही प्राप्त हो जाता है और वह है प्रेमकी पराकाष्ठा अर्थात् ब्रज-प्रेम।

ब्रज-विलास-स्तवमें श्रील रघुनाथदास गोस्वामीने यह प्रार्थना की है-

**मुदा गोपेन्द्रस्यात्मज-भुजपरिष्‍‍ङ्ग-निधये**
**स्फुरद्गोपीवृन्दैर्यमिह भगवतम् प्रणयिभि ।**
**भजद्भिस्तैर्भक्तया स्वमभिलषितम् प्राप्तमचिराद्**
**यमीतीरे गोपीश्वरमनूदिनम तं किल भजे ॥**

(ब्रजविलास स्तव ८७)

यमुनाके तटपर स्थित गोपीश्वर महादेवकी मैं प्रतिदिन स्तुति करता हूँ। इन्हीं गोपीश्वरको प्रसन्नकर गोपियोंने शीघ्रातिशीघ्र अपना मनोवाञ्छित फल अर्थात् नन्द महाराजके पुत्र श्रीकृष्णके आलिङ्गन रूपी अमूल्य रत्नको पाया था।

अपने वास्तविक और शुद्ध रूपमें भगवान् शिव नित्य ही गोपीश्वर महादेव हैं। फिर भी उन्होंने एक मधुर नरवत् लीलामें गोपीश्वर बननेका अभिनय किया। भगवान् शिव गोपी बनना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने पौर्णमासी (योगमाया)को प्रसन्न करनेके लिये कड़ी तपस्या की और जब प्रसन्न होकर पौर्णमासी देवी उनके समक्ष प्रकट हुईं, तो शिवजीने रासलीलामें प्रवेश करनेके लिये प्रार्थना की। पौर्णमासी देवीने कृपाकर उन्हें ब्रह्मकुण्डमें डुबो दिया और डुबोते ही शिवजीका रूप एक किशोरी गोपीका हो गया। उसके बाद शिवजी वंशीवटपर पहुँच गये और कुओंमें छिपकर रासलीला देखने लगे।

श्रीकृष्ण और गोपियोंने अनुभव किया कि आज रासमें वह आनन्द नहीं आ रहा है, हो न हो कोई विजातीय गोपी रासमण्डलमें है। खोजते

खोजते एक कुञ्जके अन्दर उन्हें एक नवेली मिली, तो उन्होंने उससे पूछा– "तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? तुम्हारे पतिका नाम क्या है? तुम्हारे सास-ससुरका घर कहाँ है?" योगमायाने शिवजीको गोपी शरीर तो दिया था, परन्तु गोपी अभिमान नहीं दिया था। वे सोचने लगे मैं तो पुरुष हूँ, कोई मेरा पति कैसे हो सकता है? वे अपना सिर खुजलाने लगे कि क्या उत्तर दूँ?

जब शिवजी इन प्रश्नोंका उत्तर न दे सके, तो गोपियाँ समझ गयीं यही विजातीय है और उन्हें बुरी तरहसे मारने लगीं। इतना मारा कि उनके गाल सूज गये और वे रोने लगे और रोते-रोते बोले– "योगमाये-योगमाये! मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, मैं फिर कभी भी वृन्दावनमें नहीं आऊँगा और आऊँगा भी तो पुनः कभी रासलीलामें सम्मिलित होनेका दुस्साहस नहीं करूँगा।" पौर्णमासी देवी वहाँ आयीं और गोपियोंसे शिवजीपर कृपा करनेका निवेदन किया। वे बोलीं– "यह मेरी कृपापात्री है, इसे मत मारो।" गोपियोंने मारना बन्दकर उन्हें गोपी रूपमें स्वीकार कर लिया और श्रीकृष्णने उनको गोपीश्वर नाम दिया (अर्थात् गोपियाँ जिनकी ईश्वर हैं, वही गोपीश्वर)। श्रीकृष्णने कृपाकर उन्हें रासलीलाका द्वारपाल बना दिया और कहा– "गोपीश्वरकी अनुमतिके बिना कोई भी आजसे रासलीलामें प्रवेश नहीं पा सकेगा।"

## सनातन गोस्वामीजीसे मित्रता

श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय परिकर महान वैष्णव-सन्त श्रीसनातन गोस्वामी वृन्दावनमें श्रीमदनमोहनजीके निकट निवास करते थे। श्रीधाम वृन्दावनके अन्यान्य दर्शन करनेके भाँति वे प्रतिदिन गोपीश्वर महादेवका भी दर्शन करने जाते थे। एक समय उनकी वृद्धावस्थाके कारण इतना घूमना फिरना, दर्शन करना, परिक्रमा करना असम्भव सा होने लगा। एक दिन गोपीश्वर महादेव श्रीसनातन गोस्वामीके स्वप्नमें आये और बोले– "अब तुम वृद्ध हो गये हो, मेरे दर्शनोंके लिये इतना कष्ट मत किया करो।" उन्होंने उत्तर दिया "मैं अपना यह नियम नहीं बदल सकता, मैं प्रतिदिन आपके दर्शनके लिये निश्चित ही आऊँगा।" गोपीश्वर महादेव

बोले- "इस स्थितिमें मैं स्वयं आपकी भजन कुटीके निकट बनखण्डीमें प्रकट हो जाऊँगा।" अगले ही दिन गोपीश्वर महादेव बनखण्डीमें प्रकट हो गये जो उनके पुराने मन्दिर और श्रीसनातन गोस्वामीकी भजन कुटीके निकट था, यह देखकर श्रीसनातन गोस्वामी प्रेममें विभोर हो गये और प्रतिदिन बनखण्डी महादेवके दर्शनके लिये जाने लगे।

वे जहाँ कहीं भी रहते श्रीसनातन गोस्वामी अपने प्रिय भगवान् शिवजीके बिना नहीं रह सकते थे। उदाहरण स्वरूप वृन्दावनमें गोपीश्वर महादेव और बनखण्डी महादेव, काम्यवनमें कामेश्वर महादेव तथा गोवर्द्धनमें वे अपने अत्यन्त प्रिय चक्रेश्वर महादेवके निकट वास करते थे। ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके कहनेपर समस्त ब्रजवासियोंने इन्द्रपूजा बन्दकर श्रीगिरिराज गोवर्धनकी पूजा की। यह देखकर इन्द्र क्रोधके मारे लाल-पीला हो गया और ब्रजको मटियामेट करनेके लिये प्रलयके मेघोंको भेजकर मूसलाधार वर्षा की थी, तो भगवान् श्रीकृष्णने गोवर्द्धन धारणकर ब्रजवासियोंकी रक्षा की थी। उस समय शिवजीने अपने त्रिशूलको चक्रके समान घुमाकर जलको भाप बनाकर उड़ा दिया था। इसीलिये उनका एक नाम हो गया चक्रेश्वर महादेव।

## ब्राह्मणको भगवत्-प्रेमदान

आजसे साढ़े चार सौ वर्ष पूर्वकी बात है, काशी नगरीमें एक अत्यन्त गरीब ब्राह्मण रहता था। वह शिवजीका परम भक्त था। उसकी एक कन्या थी, जिसके विवाहके लिये वह बहुत चिन्तित रहता था। विवाहके लिये धनकी कामनासे उसने श्रीकाशी-विश्वनाथसे प्रार्थना की- "हे प्रभो! आप मेरी इस कामनाको पूर्ण कर दें, तत्पश्चात् मैं अपना सम्पूर्ण जीवन भगवत्-सेवामें ही व्यतीत करूँगा।" उस सच्चरित्र ब्राह्मणकी दैन्योक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीआशुतोष उसके मङ्गलकी चिन्ता करने लगे। रात्रिकालमें श्रीकाशी-विश्वनाथने स्वप्नमें उस ब्राह्मणको आदेश दिया- "हे ब्राह्मण! तुम आज ही यहाँसे वृन्दावनको प्रस्थान करो। वहाँ यमुनाके तटपर कालिय-ह्रदके समीप ही एक टीला है, जिसके निकट सनातन गोस्वामी

नामक एक बाबा भजन करते हैं। वे ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे।" इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

ब्राह्मण शिवजीका आदेश पालन करनेके लिये वृन्दावनमें कालिया-हृदपर पहुँचा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे हरिनाममें निमग्न सनातन गोस्वामीजी मिल गये। सनातन गोस्वामीजीको साष्टाङ्ग प्रणामकर उसने श्रीकाशी-विश्वनाथका आदेश सुनाया। सब कुछ सुननेके बाद श्रीसनातन गोस्वामीने कहा— "भैया! मेरे पास तो केवल एक लंगोट है और कुछ तो है ही नहीं, मैं तो भिक्षा माँगकर अपना जीवन निर्वाह करता हूँ।" किन्तु, सनातन गोस्वामीजी सोचने लगे- "हाँ, जब मैं प्रधानमन्त्री था, तो आसानीसे सहायता कर सकता था, परन्तु अब तो मैं बिल्कुल कङ्गाल हूँ, कैसे इसकी सहायता करूँ? जब यह आदेश शिवजीका है, तो अवश्य ही कुछ-न-कुछ रहस्यकी बात होगी।" कुछ देर चिन्ता करनेके बाद उन्हें कुछ स्मरण हो आया और उन्होंने कहा— "देखो, एकबार वृन्दावनकी परिक्रमा करते समय मुझे एक पारसमणि प्राप्त हुई थी। बेकार समझकर मैंने उसे उस तरफ कूड़ेमें फेंक दिया था। तुम उसे ढूँढ़ लो।" पारसमणिका नाम सुनते ही ब्राह्मणकी हृदय आनन्दसे झूमने लगा।

ब्राह्मणने कूड़ेके ढेरमें मणिको खोजना आरम्भ किया और थोड़ी देरमें उसके हाथ वह पारसमणि लग गयी। उसने उसे लोहेसे छुआ, तो वह लोहा सोनेमें बदल गया। वह बहुत प्रसन्न हुआ और बार-बार शिवजीको धन्यवाद देने लगा। तब वह सनातन गोस्वामीजीको प्रणामकर अपने घरकी ओर चल पड़ा। थोड़ी दूर जानेके बाद उसकी अन्तरात्माने प्रश्न किया—"रे मूर्ख! तुम तो ठगे गये, जरा सोचो कि जिस वस्तुको पाकर तुम निहाल हो रहे हो और फूले नहीं समा रहे हो, उसे तो बाबाजीने कूड़ेके ढेरमें फेंक दिया था। यह तो उनके लिये तुच्छ वस्तु थी। अवश्य ही उनके पास इससे भी अत्यन्त कीमती कोई वस्तु है, जिसकी तुलनामें यह पारसमणि भी तुच्छ है।" अपने अन्तरात्माकी इस आवाजको सुनकर वह वहीं ठिठक गया और कुछ विचार करनेके बाद पुनः बाबाजीके पास लौट आया।

वह लौटकर सनातन गोस्वामीजीसे बोला- "बाबा! मैं जानता हूँ कि आपके पास पारसमणिसे अधिक मूल्यवान और कोई रत्न है जिसके

कारण आप पारसमणिको भी भूल गये थे। मैं वही रत्न चाहता हूँ, आप कृपाकर मुझे वह रत्न दे दें।" सनातन गोस्वामी उन बातोंको सुनकर मन्द–मन्द मुस्कान–सहित कहने लगे –"देखो, शिवजीने ही तुम्हारे हृदयमें ऐसी प्रेरणा दी है। यदि तुम इससे भी श्रेष्ठ धन प्राप्त करना चाहते हो, तो यह मणि यमुनाजीको भेंट कर दो और स्नानकर मेरे पास आओ।" तब उस ब्राह्मणने पारसमणिको यमुनामें बहुत दूर फेंक दिया और स्नान करके वापिस आया, तो सनातन गोस्वामीजीने कहा– "सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें कृष्ण–प्रेमसे बढ़कर और कोई धन नहीं है तथा वे श्रीकृष्ण स्वयं हरिनामके रूपमें अवतरित हुए हैं। जिसे हरिनामरूपी धन प्राप्त हो जाता है, उसके लिये इस जगतकी अत्यन्त अनमोल वस्तुएँ भी तुच्छ हो जाती हैं। यह हरिनाम 'चिन्तामणि' है। शिवजीकी कृपासे तुम्हारा हृदय निर्मल हो गया है, अब तुम यह हरिनाम ग्रहण करो।" तब उन्होंने ब्राह्मणको 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' महामन्त्र दिया और उसका आलिङ्गन किया। उस आलिङ्गनको प्राप्तकर ब्राह्मणकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उसने गद्‌गद चित्तसे अवरुद्ध वाणीमें कहा– "हे प्रभो! शिवजीने कृपाकर अवश्य ही मुझे यहाँ भेज दिया, किन्तु यथार्थतः आपके दर्शनसे ही मेरा चित्त निर्मल हुआ है।" इतना कहकर वह उनके चरणोंमें लोट–पोट होने लगा। तब सनातन गोस्वामीने कहा– "यह मन्त्र साक्षात् श्रीराधा–कृष्ण है। इसके जपसे तुम्हें शीघ्र ही श्रीराधा–कृष्ण युगलकी अष्टकालीय सेवाकी प्राप्ति होगी। तुम यहीं रहकर भजन करो। तुम्हारी बेटीका विवाह अपने आप सुचारू रूपसे हो जायेगा, कोई चिन्ता मत करो।" वह ब्राह्मण उनके ही समीप रहकर निरन्तर उस महामन्त्रका जप करते हुए थोड़े समयमें ही श्रीराधा–कृष्णका परम भक्त बन गया और अप्राकृत आनन्दमें निमग्न रहने लगा। इस प्रकार शिवजीने अपने भक्तको कृष्ण–प्रेमरूपी अमूल्य निधि प्रदान की।

# अध्याय ५
# (पद और व्यक्तित्व)

## शिवजीका स्वरूप

जब श्रीकृष्णकी सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है, तब वे स्वयंका विस्तार महासङ्कर्षणके रूपमें करते हैं और सङ्कर्षण अपना विस्तार प्रथम पुरुषावतार कारणोदशायी (कारण-समुद्रमें शयन करनेवाले) महाविष्णुके रूपमें करते हैं। महाविष्णु कारण-समुद्रमें शयन करते हुए मायाके प्रति ईक्षण (दृष्टिपात) करते हैं। वही दृष्टिपात सृष्टिका निमित्त कारण है। किसी-किसी शास्त्रमें शिवशक्ति (माया)को जगत्‌का कारण बतलाया गया है। परन्तु जिस प्रकार विराट् पुरुषके वर्णनमें ब्रह्माण्डको भगवान्‌का स्वरूप माना गया है, उसी प्रकार यहाँ भगवान्‌का अङ्ग मानकर शिवशक्तिको जगत्‌का कारण कहा गया है।

विष्णुपुराणके अनुसार यह सारा जड़ जगत् भगवान्‌के अंश या स्वांशकी ज्योतिका आभास अर्थात् अप्रकट पुरुषका लिङ्ग (चिह्न) है। महाविष्णुकी प्रतिफलित ज्योतिका आभास ही शम्भु-लिङ्ग है; वह ज्योति नित्य है, परन्तु शम्भुलिङ्ग नित्य नहीं है। लिङ्ग कहनेसे चिह्न या स्वरूपको ही समझना चाहिये। भगवान्‌का आदि अवतार जो केवल पिण्ड-स्वरूप है, जिसमें सारा जड़ जगत् अवस्थित होता है, जो अनन्त जीवोंका आधारस्वरूप (आश्रय) है, जो सबका कल्याणकारी है, उसीको शिवलिङ्ग या शम्भु कहा जाता है। बहुतसे भक्तजन शिवजीकी आराधना शम्भुलिङ्गके स्वरूपमें करते हैं।

एक अन्य प्रतिबिम्ब जिसे योनि कहते हैं, वह रमादेवीकी परछाई मात्र है। रमादेवी महाविष्णुकी नित्य शक्ति हैं और वैकुण्ठमें वे श्रीनारायणकी प्रिय अर्धाङ्गिनी लक्ष्मीदेवी ही हैं। यह उनका मूल चिन्मय स्वरूप है और योनि उनकी सीमित जगत् धारण करनेकी (अपरा) शक्तिमात्र है, उसे प्रधान भी कहा जाता है।

महाविष्णु अपनी दो शक्तियोंके द्वारा इस भौतिक जगत्की रचना करते हैं। पहली शक्तिको निमित्त शक्ति कहते हैं और दूसरीको उपादान शक्ति। इन दोनोंको इस उदाहरणके द्वारा समझा जा सकता है- जैसे कोई कहे कि 'मैंने एक साँपको लाठीके द्वारा मारा।' जिस व्यक्तिने अपनी इच्छासे यह कार्य किया, वह निमित्त हुआ और लाठी साधन (उपादान) बनी। एक दूसरे उदाहरणमें एक कुम्हार बर्तन बनाता है। कुम्हारके बर्तन बनानेकी इच्छा निमित्त कारण है और उस कार्यमें व्यवहृत सभी द्रव्य जैसे कि चाक, मिट्टी और पानी आदि सब उपादान कारण हैं।

महाविष्णुकी निमित्त शक्ति अपना दूसरा स्वरूप 'योनि'के रूपमें लेती है और उपादान शक्ति 'शम्भुलिङ्ग'का स्वरूप धारण करती है। फिर 'शम्भुलिङ्ग' और उनकी स्त्री शक्ति 'योनि'के मिलनसे सृष्टि होती है। शम्भु परमेश्वरके 'लिङ्ग' कहे जाते हैं। इसका अर्थ है कि वे 'श्रीकृष्णके पौरुष्यकी सृष्टि करनेकी शक्तिके प्रकट चिह्न हैं' और वे जगतके निर्माण हेतु ही प्रकट होते हैं। वह शक्ति जो कि भौतिक सृष्टिको जन्म देती है, उसे माया कहते हैं और उसीका भीतरी रूप 'योनि' है। यद्यपि 'लिङ्ग' और 'योनि' आदि शब्द अश्लील जान पड़ते हैं, तथापि इन शब्दोंके द्वारा केवल 'पुरुषशक्ति' अर्थात् 'कर्त्ताप्रधान क्रिया-शक्ति' और 'स्त्रीशक्ति' अर्थात् 'कर्मप्रधान क्रिया-शक्ति'को ही समझना चाहिये।

इसमें एक अतिशय गूढ़ विचार है। वह यह है कि निमित्त और उपादानको लेकर पुरुषकी इच्छा ही सृष्टि-कार्य करती है। यहाँपर माया अर्थात् योनि—निमित्त है; शम्भु अर्थात् लिङ्ग—उपादान है; तथा पुरुष अर्थात् इच्छामय कर्त्ता—महाविष्णु हैं। द्रव्यमय प्रधानरूप तत्त्व—उपादान है तथा आधारमय प्रकृति तत्त्व ही माया है। उन दोनोंको मिलानेवाले इच्छामय-तत्त्व ही प्रपञ्चरूप जड़-जगत्का सृजन करनेवाले—श्रीकृष्णके अंशस्वरूप पुरुष महाविष्णु हैं। वे ही सृष्टिकर्त्ता हैं।

शिवजीके दो रूप कहे जाते हैं। एक जो 'शिवः शक्तियुक्तः शश्वत त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः' हैं, अर्थात् जो कैलाशपर रहनेवाले शिव मायाशक्तिसे युक्त रहते हैं, वे वैकारिक, तैजस और तामस इन तीन अहङ्कारोंसे आवृत रहते हैं। इन्हीं शिवके लिये प्रथम अध्यायमें दूध और दहीके उदाहरणमें दहीकी उपमाका प्रयोग किया गया है। 'अन्यस्तु तदाविर्भाव विशेष' अर्थात्

दूसरे जो शिव हैं, वे भगवान्‌के विशेष आविर्भाव-रूप 'सदाशिव' विष्णुतत्त्व हैं, जो परम कल्याणकारी हैं।

मायाका तमोगुण, तटस्थ शक्तिका स्वल्पता-गुण और चित्‌शक्तिका ह्लादिनी मिश्रित सम्विद्-गुण—इनके मिश्रणसे ज्योतिर्मय शम्भुलिङ्ग रूप 'सदाशिव' हैं और उनसे ही रुद्रदेव प्रकट होते हैं। सृष्टि कार्यके लिये द्रव्यव्यूहमय उपादान, स्थितिकार्यमें किसी-किसी असुरके विनाश, संहारकार्यके लिये सारी क्रियाओंके सम्पादनके लिये स्वांश-भावाभास विभिन्नांश-रूप शम्भुके रूपमें श्रीगोविन्द ही 'गुणावतार' होते हैं। इन शम्भुको ही कालपुरुष कहा गया है।

शम्भुमें जीवोंके पचास गुण प्रचुररूपमें तथा जीवोंमें न पाये जानेवाले और भी पाँच महागुण आंशिक रूपमें होते हैं। इसीलिये शम्भुको जीव नहीं कहा जा सकता है; वे ईश्वर हैं तथापि विभिन्नांशगत हैं। वे भी परमेश्वरके समान त्रिकालदर्शी हैं। उनका एक नेत्र सूर्य और दूसरा चन्द्रमाके समान है। उनका एक तीसरा नेत्र भी है जो दोनों भौंहोके मध्यमें स्थित है। अपने इसी तीसरे नेत्रके द्वारा ही प्रलयके समय वे अग्नि वर्षा करते हैं।

यथार्थतः शम्भु श्रीकृष्णसे अलग कोई स्वतन्त्र ईश्वर-तत्त्व नहीं हैं। किन्तु जो लोग शम्भुको श्रीकृष्णसे अलग एक स्वतन्त्र ईश्वर समझते हैं, अर्थात् श्रीकृष्ण और शम्भुमें भेद-बुद्धि रखते हैं, वे भगवान्‌के निकट अपराधी हैं। शम्भुकी ईश्वरता श्रीकृष्णकी ईश्वरताके अधीन है। इसीलिये वे वस्तुतः अभेद तत्त्व हैं। अभेदका लक्षण यह है कि जैसे दुग्ध, अम्ल आदिके योगसे दधि बन जाता है, वैसे ही विकार-विशेषके योगसे शम्भु पृथक्-स्वरूप प्राप्त होकर भी परतन्त्र हैं।

## शिवजी ब्रह्मासे श्रेष्ठ

वेदोंके अनुसार 'स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान् विरिञ्चितामेति' अर्थात् यदि कोई मनुष्य सौ जन्मों तक वर्णाश्रम धर्मके नियमोंका सावधानीपूर्वक पालन करता है, तो उसे ब्रह्माका पद मिल जाता है।

समाजको सुचारु रूपसे चलानेके लिये चार वर्ण और चार आश्रमोंकी

व्यवस्था की गयी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार वर्ण हैं तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार आश्रम हैं। चार वर्णोंका विभाग व्यक्तिके जन्मके आधारपर न होकर गुण और कर्मके आधारपर होता है। जैसा कि गीता (४/१३)में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।**

"गुण और कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं।"

श्रीमद्भागवत (७/११/३५)में नारदजीने युधिष्ठिर महाराजसे कहा—

**यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।**
**यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्॥**

"जिस पुरुषके वर्णको बतलानेवाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्णवालेमें भी मिले तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये।"

यदि कोई ब्रह्माके पदपर रहते हुए सौ जन्मों तक अपना कार्य निपुणतासे करता है, तो वह शिवके रुद्र रूपमें कार्य करनेमें सक्षम हो जाता है। इसीलिये शिवका पद ब्रह्मासे श्रेष्ठ है और यही प्रमाण है कि शिवजी ब्रह्मासे अधिक शक्तिशाली हैं। किसी समय जब कोई भी जीव ब्रह्मा बननेका अधिकारी नहीं होता है, तो स्वयं भगवान् विष्णु (श्रीकृष्णके प्रकाश) ब्रह्माका पद ग्रहण करते हैं, परन्तु ऐसा होना अत्यन्त दुर्लभ है।

शिव–तत्त्व अत्यन्त विषम है। ब्रह्माजीको समझना उतना कठिन नहीं है क्योंकि ब्रह्माजी सदा जीव तत्त्व हैं, परन्तु भगवान् शिव अणु जीवात्मा नहीं हैं। भगवान् शिव भगवान् विष्णुके अंशावतार हैं, परन्तु कभी–कभी कोई जीव भी शिवजीके अंश–रूप रुद्र हो सकता है। पद और पात्रताके आधारपर शिवजी ब्रह्माजीसे श्रेष्ठ हैं। यदि भगवान् शिवके कार्यको देखा जाय, तो वे प्रलयके देवता हैं और ब्रह्माजी ब्रह्माण्डकी सृष्टि कार्यमें *निमित्तमात्र* हैं।

प्रलय दो प्रकारकी होती है, एक जब ब्रह्माजीके दिवसका अन्त होता है और दूसरा जब सौ वर्ष पूर्ण होनेपर उनके जीवनका अन्त होता है।

ब्रह्माजीका एक दिवस पृथ्वीके 4,32,00,00,000 वर्षोंके बराबर है। इतनी ही लम्बी उनकी रात्रि है। ब्रह्माजी प्रत्येक दिनके अन्तमें सभी बद्धजीवात्माओंके साथ गर्भोदशायी विष्णुमें प्रवेश करके अपनी एक रात्रि योगनिद्रामें विश्राम करते हैं और बद्धजीवात्माएँ वहाँ अपने-अपने सूक्ष्म शरीरके भीतर विश्राम करती हैं। ब्रह्माजीके रात्रिकालमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलमग्न हो जाता है। ब्रह्माजी अगले दिवसके आरम्भमें पुनः सृष्टि करते हैं और बद्धजीवात्माएँ पुनः अपने-अपने पूर्व कर्मोंके अनुसार स्थूल शरीर धारण करके ब्रह्माण्डमें क्रियाशील हो जाती हैं। ब्रह्माजीके जीवनके अन्तमें शिवजी प्रलय कर देते हैं और गर्भोदशायी विष्णु अपने लाखों स्वरूपोंमें सभी बद्ध-आत्माओंके साथ कारणोदशायी महाविष्णुके भीतर प्रवेश करते हैं।

जैसा कि पहले बताया गया है कि शिव और ब्रह्मा पद हैं। भगवान् शिव और ब्रह्मा साधारण मनुष्यों जैसे नहीं हैं, परन्तु उनके पद किसी राष्ट्रके राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री जैसे हैं, जहाँपर मनुष्योंको अपने पदके अनुसार कार्य करना होता है। ब्रह्मा जगत्की सृष्टि करते हैं और शिवजी सृष्टिका संहार करते हैं। शिवजीके प्रलयका कार्य उस किसानके कार्यके समान है, जो एक बड़े खेतमें गेहूँकी खेती करता है। पौधे रोपता है, पानी देकर पौधोंको सींचता है, जानवरों-पक्षियोंसे पौधोंकी रक्षा करता है और पाँच-छः माहके उपरान्त जब गेहूँ पक जाता है, तो किसान फसलको काट लेता है। उस फसलसे वह गेहूँको अलग कर लेता है और पौधोंका दूसरा हिस्सा बेकार हो जाता है। यदि वह पड़ा रहे तो सड़ जाता है और बीमारीके कीटाणुओं और साँपोंका आश्रय स्थल बन जाता है, इसीलिये किसान उसे जला देता है। जैसे किसान पौधोंसे गेहूँके दाने अलग निकाल लेता है, उसी प्रकार भगवान् शिव भी आत्माओंको उनके शरीर और इस जगत्से बाहर निकाल लेते हैं। जब वे प्रलय या विनाशका निर्णय लेते हैं, तो पूरे ब्रह्माण्डको अग्निसे भस्म कर देते हैं, परन्तु आत्माओंका विनाश नहीं होता। प्रलयके देवता होनेके कारण शिवजी भगवान् श्रीकृष्णकी साक्षात् सेवा नहीं कर सकते हैं।

# शिवजी और प्रह्लाद

जैसा कि पहले बताया गया है नारदजीने शिवजीका गुणगान भगवान् श्रीकृष्णके सबसे प्रिय भक्तके रूपमें किया है। परन्तु शिवजीने नारदजीसे कहा– "प्रह्लाद मुझसे उन्नत भक्त हैं वे सब समय भगवान्‌के गुण-लीला आदिके श्रवण, कीर्त्तन और स्मरणमें ही डूबे रहते हैं। भगवान् श्रीनृसिंह और श्रीवामन उन्हें स्वयं ही दर्शन देते हैं।"

यद्यपि शिवजी प्रह्लादसे उन्नत भक्त हैं, तो भी उन्होंने ऐसा इसलिये कहा कि लोग उत्साहित होकर प्रह्लाद महाराजजीके आदर्शों, चरित्र और शिक्षाओंको अपनायें।

प्रह्लाद महाराजके चरित्रका वर्णन श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धमें मिलता है। प्रह्लादजी जब अपनी माताके गर्भमें थे, तो उनके असुर पिता हिरण्यकशिपुने समस्त लोकोंके राज्यकी कामनासे जंगलमें जाकर घोर तपस्या की। हिरण्यकशिपुकी अनुपस्थितिमें इन्द्रने उसके राज्यपर आक्रमणकर सभी असुरोंको परास्त कर दिया। जब उसने देखा कि हिरण्यकशिपुकी पत्नी कयाधु गर्भवती है, तो वह उसे बन्दी बनाकर अपने साथ ले जाने लगा। मार्गमें नारदजीने जब इन्द्रको कयाधुको बलपूर्वक ले जाते देखा, तो उन्होंने कहा– "यह स्त्री सती-साध्वी है, इसे छोड़ दो।" इन्द्रने कहा– "हे देवर्षि! इसके गर्भमें असुर हिरण्यकशिपुकी सन्तान है, उस बालकके जन्म लेते ही उसका वधकर इसे छोड़ दूँगा।" नारदजीने कहा– "इसके गर्भमें अति प्रभावशाली भगवद्भक्त है, तुममें उसे मारनेकी क्षमता नहीं हैं।" नारदजीकी बातपर विश्वास करके इन्द्रने उसे छोड़ दिया।

नारदजीने कयाधुसे कहा– "बेटी, जब तक तुम्हारे पति तपस्यासे लौटकर नहीं आते, तब तक तुम मेरे आश्रममें निर्भय होकर रहो।" कयाधुने अपने गर्भस्थ शिशुकी रक्षाकी कामनासे नारदजीसे कहा कि आप ऐसा वरदान दें कि जब तक मेरे पति लौटकर न आयें, तब तक मेरे पुत्रका जन्म न हो। नारदजीने कहा– "बेटी ऐसा ही होगा।" नारदजीके आश्रममें रहते हुए कयाधु उनकी सेवा-शुश्रूषा करती और नारदजी उसे

भागवत धर्मका तत्त्व और ज्ञान सुनाते। वास्तवमें वे यह सब उपदेश कयाधुके गर्भमें प्रह्लादजीके उद्देश्यसे ही सुनाते।

हिरण्यकशिपुने हजारों वर्ष तक बहुत कठोर तपस्या की और ब्रह्माजीको प्रसन्नकर वरदान माँगा कि उनके द्वारा बनाये गये किसी भी प्राणीसे उसकी मृत्यु न हो। भीतर-बाहर, दिनमें, रात्रिमें, किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें कहीं भी उसकी मृत्यु न हो और उसे ब्रह्माजी जैसा ऐश्वर्य प्राप्त हो। ब्रह्माजीसे ये वरदान पाकर हिरण्यकशिपु अपने राज्यमें लौट आया। वरदान पाकर वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसने सारे लोकोंको जीतकर स्वर्गपर अधिकार कर लिया। कयाधु अपने पतिके पास आ गयी और तब प्रह्लादजीका जन्म हुआ। जन्मके समयसे ही प्रह्लादजीको प्रत्येक वस्तुमें भगवान्‌की उपस्थितिकी अनुभूति थी और वे भगवान्‌के प्रेमकी शिक्षा पाँच वर्षकी अवस्थासे ही अपने गुरुकुलके सहपाठियोंको देते थे।

असुर हिरण्यकशिपुने जब प्रह्लादजीके ऐसे भाव देखे, तो वह अत्यन्त क्रोधित हो गया। उसने प्रेमसे, दण्डसे प्रह्लादजीके भावोंको बदलनेका प्रयास किया, परन्तु सफल नहीं हुआ। तब उसने प्रह्लादजीको मारनेके लिये विष दिया, खौलते हुए तेलमें डाला, पहाड़की चोटीसे फेंका, अस्त्रोंसे काटनेका प्रयत्न किया, परन्तु भगवान्‌ने सभी परिस्थितियोंमें प्रह्लादजीकी रक्षा की और हिरण्यकशिपुके सारे प्रयास विफल हो गये। इन सभी स्थितियोंमें प्रह्लादजी कभी भी विचलित नहीं हुए और वे सदा अपने प्रभु भगवान् विष्णुका स्मरणकर आनन्दमें मग्न रहते। जब हिरण्यकशिपुने स्वयं प्रह्लादजीका वध करनेके लिये तलवार उठायी, तो भगवान्‌ने नृसिंह (आधे सिंह और आधे नर)रूपमें प्रकट होकर हिरण्यकशिपुका वध किया। नृसिंह भगवान्‌का क्रोध इतना विकट हो रहा था कि ब्रह्मा, शिव और कोई भी अन्य देवता अपनी स्तुतिसे उसे शान्त नहीं कर पाया, यहाँ तक कि स्वयं लक्ष्मीजी उनके निकट नहीं जा सकीं। तब छोटेसे बालक प्रह्लादने स्तुतिकर उन्हें शान्त किया। नृसिंह भगवान्‌ने प्रह्लादको अपनी गोदमें बिठाकर वर माँगनेको कहा, तो प्रह्लादजीने कहा- "मेरे पिताने आपके प्रति बहुत अपराध किये हैं, आप कृपा कर उन्हें क्षमाकर दें और उन्हें तथा सभी बद्धजीवोंको मुक्तकर दें।" प्रह्लादजीका हृदय इतना उदार

है कि वे किसीका अपराध न लेकर केवल सभीका कल्याण चाहते हैं, इसीलिये वे इस जगत्में सभी शुद्धभक्तों द्वारा आदरणीय हैं।

एक विचारसे शिवजी प्रह्लादजीसे उन्नत भक्त हैं और दूसरे विचारसे नहीं भी हैं। यह समझनेके लिये उनके पद और व्यक्तित्वका विचार करना पड़ेगा। नृसिंह भगवान्‌के प्रकट होनेपर प्रह्लाद महाराजने केवल उनकी स्तुति की, परन्तु साक्षात् कोई सेवा नहीं की। प्रह्लादजीने न ही भगवान्‌के चरण दबाये, न ही जल अथवा कुछ और भोग अर्पण किया, क्योंकि प्रह्लादजी सोचते हैं कि मेरे प्रभु सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, आत्माराम-आप्तकाम हैं और उनके इस विचारके अनुसार उनके आराध्यदेवको न तो थकान ही होती है और न ही भूख-प्यास लगती है।

शिवजी गोपीश्वर, हनुमान और भीम आदिके रूपमें अपने प्रभुके नित्य पार्षद हैं। हनुमानके स्वरूपमें वे सदैव अपने प्रभु श्रीरामके निकट सेवामें तत्पर रहते हैं। भीमके स्वरूपमें वे सदा भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं और इस कलिकालमें जब वे हनुमान और भीमके संयुक्तरूपमें आते हैं, तो वे हमारे सम्प्रदायके गुरु श्रीमन्मध्वाचार्यके रूपमें जाने जाते हैं। श्रीमध्वाचार्यजी सभी माध्वगौड़ीय सम्प्रदायसे सम्बन्धित वैष्णवोंके मूल आचार्य हैं। यह माध्वगौड़ीय सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदायके नामसे भी जाना जाता है क्योंकि यह गुरु-परम्परा ब्रह्माजीसे आरम्भ हुई थी। भगवान् श्रीकृष्णने सर्वप्रथम अपना ज्ञान ब्रह्माजीको दिया और फिर ब्रह्माजीने नारदजीको, नारदजीने व्यासजीको और व्यासजीने मध्वाचार्यजीको यह ज्ञान प्रदान किया।

वे आत्माएँ जो लाखों जन्मोंके भक्तियोगका आश्रय करनेके कारण मुक्त हो गयी हैं और जिन्होंने इस जगत्‌के सभी सम्बन्धों और उत्तरदायित्वोंका, यहाँ तक कि ब्रह्मा और शिवके दायित्वको भी त्याग दिया है और नित्य ही भगवान् श्रीकृष्णकी कथा, कीर्त्तन और गुणगान करती हैं, वे इस जगत्में प्रह्लादजी जैसे भक्तोंके रूपमें जन्म लेती हैं। यह सत्य भगवान् शिवने नारदजीके निकट प्रकट किया। प्रह्लाद महाराजको इस संसारकी रचना और विनाशसे कोई लगाव नहीं था। वे इन सब कार्योंको तुच्छ समझते थे। यद्यपि उनको उत्तराधिकारमें बड़ा राज्य मिला था,

परन्तु उसके सञ्चालनका भार उन्होंने अपने मन्त्रियोंपर छोड़ रखा था। वे सदा भगवान्‌के गुण-लीला आदिके श्रवण, कीर्त्तन और स्मरणमें ही डूबे रहते थे। प्रह्लाद जैसे भक्तोंको भगवान्‌के पास नहीं जाना पड़ता वरन् भगवान् स्वयं उन्हें दर्शन देनेके लिये प्रकट होते हैं।

भगवान् शिवने नारदजीको बताया कि सदैव ब्रह्माण्डके कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण ही वे अपने प्रभुकी नित्य सेवा और दर्शन नहीं कर पाते, परन्तु प्रह्लादजी भगवान् श्रीनृसिंह और श्रीवामनके दर्शन लाभ करते हैं। यद्यपि ब्रह्मा और शिवजी दोनों प्रह्लाद महाराजसे भक्तिमें श्रेष्ठ हैं, तो भी उन्हें अपने पदपर कार्य करते हुए प्रकृतिके गुणोंका सङ्ग करना पड़ता है। ब्रह्माजीका कार्य सृष्टि और उत्पत्ति है जो कि रजोगुणका कार्य है और शिवजी प्रलय करते हैं जो तमोगुणका कार्य है, इसी कारणसे वे गुणावतार कहलाते हैं। प्रह्लाद महाराज निर्गुण हैं जो कि प्रकृतिके तीनों गुणोंसे परे हैं। उन्हें प्रकृतिके तीनों गुण सत्त्व, रज और तम स्पर्श नहीं कर सकते। यद्यपि भगवान् शिव भी इस प्रकृतिके तीन गुणोंसे परे हैं, परन्तु उन्हें अपना कार्य कुशलतापूर्वक करनेके लिये तमोगुणको अङ्गीकार करना पड़ता है।

इसीलिये हम यहाँ देखते हैं कि पदके सन्दर्भमें प्रह्लादजी शिवजीसे उन्नत भक्त दिखाई देते हैं और व्यक्तित्वके आधारपर शिवजी कहीं अधिक उन्नत भक्त हैं।

## उपसंहार

शिव-तत्त्वका यह विषय इतना गहरा और विस्तृत है कि उनकी लीलाओं, उनके रूपों और महिमाओंका वर्णन करने वाले प्रत्येक प्रसङ्गको यहाँ सम्मिलित किया जा सकता है। परन्तु यहाँ हमारा मुख्य उद्देश्य पाठकोंको शिवजीके विषयमें ज्ञान प्रदानकर उत्साहित करना है जिससे कि उनके हृदयमें अपनी चेतना विकसित करनेकी इच्छा जाग्रत हो। शिवजीका प्रत्येक कार्य और आचरण हमें बहुमूल्य शिक्षा प्रदान करता है।

शिवजी श्मशानमें वास और अपने शरीरमें चिताकी भस्मको धारण करके हमें शिक्षा दे रहे हैं कि यह भौतिक शरीर एक दिन राख ही हो जायेगा, इसीलिये सारा जीवन इस शरीरके लिये सुख-सुविधाओंको जुटानेमें मत गँवाओ। यह दुर्लभ मनुष्य जीवन केवल भगवद्-प्राप्तिके लिये ही मिला है।

तामसिक व्यक्ति सोचते हैं कि शिवजी भांग-गांजेका पान करके नशेमें रहते हैं, परन्तु वे नहीं जानते हैं कि शिवजी उन्हें छलनेके लिये ही ऐसा बाह्य वेष बनाया करते हैं। वास्तवमें वे सदा भगवान् श्रीकृष्णकी अष्टकालीय लीलाओंका ही ध्यान करते हैं और सदा उसीके आवेशमें मग्न रहते हैं। इस प्रकार वे हमें भी भगवान्‌की लीलाओंमें रमनेकी शिक्षा देते हैं।

कुछ लोग शिवजीकी आराधना 'शिवोऽहं शिवोऽहं' का जप करते हुए करते हैं अर्थात् वास्तवमें मैं भी शिव हूँ, केवल साधनकालमें अभी पूजक हूँ। शिवजी विचार करते हैं कि अभी साधनकालमें यह व्यक्ति देवी पार्वतीकी माताके रूपमें आराधना करता है और सोचता है कि सिद्धि होनेपर वह भी शिव हो जायेगा अर्थात् तब पार्वती इसकी पत्नी हो जायेगी। शिवजी ऐसे अधम व्यक्तिका सिर काट लेते हैं और उसके मुण्डको अपने गलेमें धारण करते हैं।

शिवजी समस्त देहमें सर्पोंके आभूषण पहनते हैं क्योंकि उनके गुरु

भगवान् संकर्षण हैं जिनके एक प्रकाश शेषजी हैं। अपने गुरुकी सदा अनुभूतिके लिये वे इस प्रकारके आभूषण धारण करते हैं।

शिवजी परम वैष्णव हैं और मायाके तीनों गुणोंसे परे हैं। परन्तु वे ऐसा बाह्य वेष दिखाकर संसारके तामसिक व्यक्तियोंको आकर्षित करते हैं जिससे वे उन्हें भी भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमें धीरे-धीरे अग्रसर कर सकें।

***श्रीश्री गोपीश्वर महादेवकी जय !***
***श्रीश्री कामेश्वर महादेवकी जय !***
***श्रीश्री नन्दीश्वर महादेवकी जय !***
***श्रीश्री चक्रेश्वर महादेवकी जय !***
***श्रीश्री लोकनाथ महादेवकी जय !***
***श्रीश्री पार्वती पतिकी जय!***
***श्रीश्री शङ्करकी जय!***
***हर हर! हर हर महादेवकी जय !!***